विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ फरवरी-मार्च—१९९६ अंक—२-३

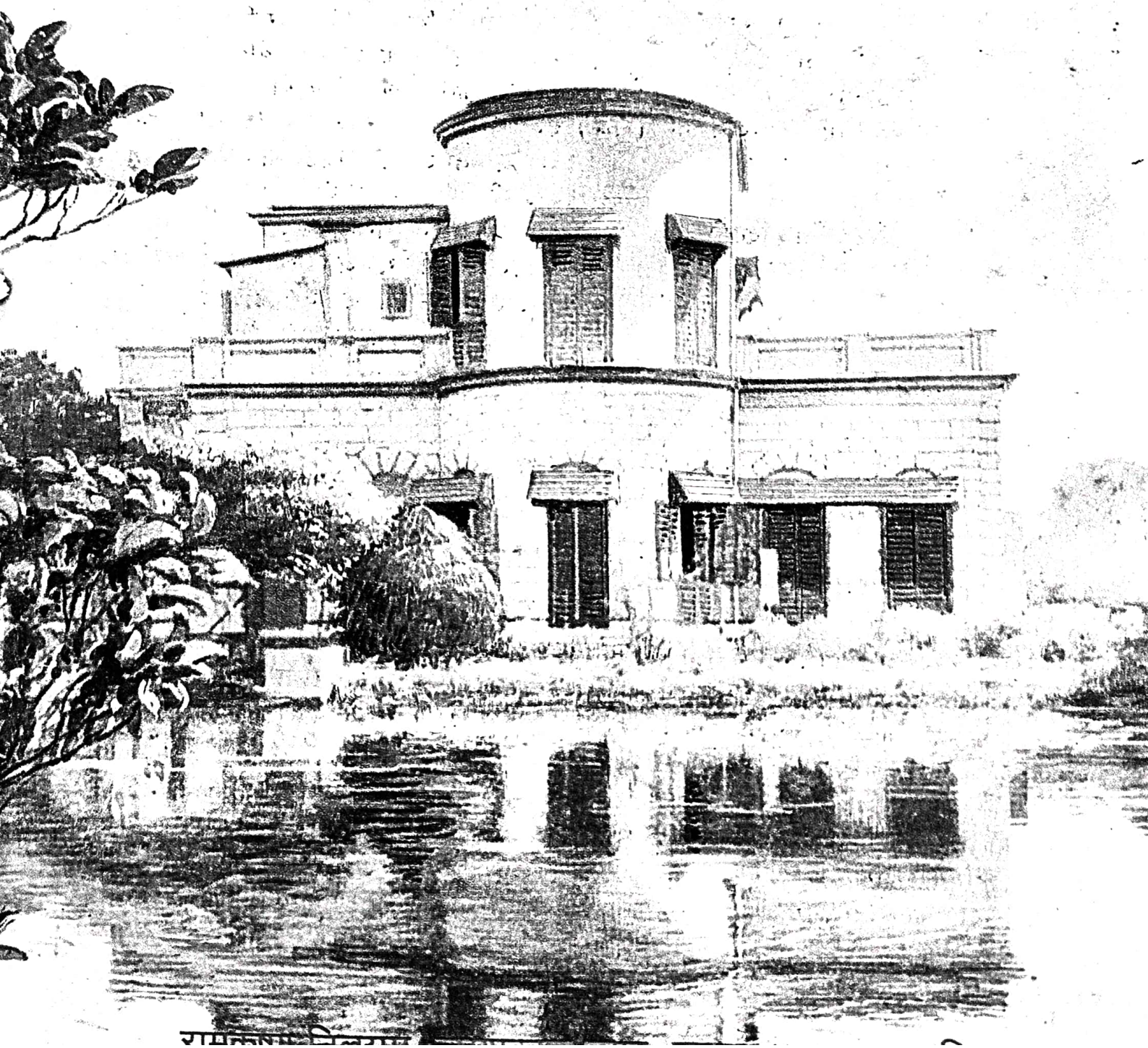

रामकृष्ण-विलास

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दोक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन- लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ.)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२, महावीर बाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल—नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नईदिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा(म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा०(श्रीमती)रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ०प्र०)
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. रामकृष्ण-पद गहिए	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द तथा धर्म महासभा	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	३
४. श्रीरामकृष्ण की प्रथम प्रस्तर प्रतिमा	स्वामी निर्वाणानन्द	६
५. अमृतवाणी के शिल्पी : श्रीरामकृष्ण	स्वामी लोकेश्वरानन्द	८
६. रामकृष्ण मिशन और महाकवि निराला	श्री अजय कुमार	११
७. मौन-सम्भाषण	स्वामी योगात्मानन्द	१६
८. स्वामी विवेकानन्द की कश्मीर अमरनाथ-यात्रा	श्री मोहन सिंह मनराल	२२
९. निन्दक नियरे राखिए	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	३५
१०. सागर-द्वीप का आदमी	स्वामी निरामयानन्द	४२
११. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	४५
१२. लघु कथा	(संकलन)	४८

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ फरवरी-मार्च—१९९६ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केशरनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से--	५५ रु०
एक प्रति -	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

अवतार मानो ईश्वर का कर्मचारी है—जैसे जमींदार और उसका नायब। जमींदार अपने अधिकार के प्रदेशों में से जहाँ भी कोई गड़बड़ हो वहीं अपने नायब को भेज देता है, उसी प्रकार संसार में जहाँ भी धर्म हानि होने लगती है, उसे दूर करने के लिए ईश्वर वहीं अपने अवतार को भेज देते हैं।

(२)

अवतार ईश्वरीय ज्ञान और शक्ति लेकर ही जन्म-ग्रहण करते हैं। ज्ञान की निम्न से लेकर सर्वोच्च अवस्था तक सभी अवस्थाओं में वे संचरण कर सकते हैं। जैसे बाहर का आदमी राजमहल के बाहरी भाग तक ही जा सकता है परन्तु राजपुत्र महल में सर्वत्र स्वच्छन्द घूम सकता है।

(३)

जिन-जिन के निकट कोई शिक्षा प्राप्त होती हो उन सभी को गुरु न कहकर एक निर्दिष्ट व्यक्ति को ही गुरु कहने की क्या आवश्यकता है? किसी अनजान जगह जाना हो तो जो रास्ता जानता है ऐसे किसी एक व्यक्ति के निर्देशानुसार ही जाना चाहिए। अनेक लोगों से रास्ता पूछते रहने पर गड़बड़ हो जाती है। वैसे ही, ईश्वर के निकट जाना हो तो एक अनुभवी गुरु के निर्देशानुसार चलना चाहिए। इसीलिए एक गुरु का प्रयोजन है।

(४)

बड़ा जहाज खुद भी आसानी से चला जाता है और साथ ही सामान से लदी बड़ी नावों और डोंगियों को भी खींच ले जाता है। इसी प्रकार अवतार-महापुरुष जब आते हैं तो अनायास ही बद्ध-जीवों को भवसागर के पार खींच ले जाते हैं।

भजन

रामकृष्ण पद गहिए

—डॉ० केदारनाथ लाभ

रामकृष्ण पद गहिए, रे मन।
भव-तृष्णा की ज्वाला में जल, अब न अधिक दुःख सहिए। रे मन।

कंचन - काम तुम्हें भरमाते
दारुण दुःख रहे उपजाते
अकुलाते रह गये रात-दिन, मिला तुम्हें क्या कहिए। रे मन।

माया-मोह रहे नित छलते
झूठे सुख हित रहे मचलते
विषय-वासना के घन-वन में, भटक अटक मत रहिए। रे मन।

चले मोड़ मुँह जो थे अपने
बिखर गए मोती-से सपने
यह संसार आग का दरिया, मन बन मोम न बहिए। रे मन।

रामकृष्ण प्रभु भव-भयहारी
दीनबन्धु, आरत-हितकारी
निरवलम्ब-अवलम्ब, उन्हें तज तुम्हें कौन धन चहिए। रे मन!

श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द तथा धर्म महासभा

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
परमाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

(उद्बोधन के जून अंक में प्रकाशित लेख का बंगानुवाद
अनुवादक– स्वामी निखिलेश्वरानन्द

भाइयो एवं बहनो,

रामकृष्ण मठ तथा मिशन के द्वारा आयोजित इस धर्म महासम्मेलन में समागत विभिन्न धर्म के विशिष्ट प्रतिनिधियों तथा इसमें सम्मिलित होने वाले अन्य लोगों से मिलने में मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आपलोगों में से प्रत्येक का मैं आदरपूर्वक अभिनन्दन तथा स्वागत करता हूँ।

मुझे इसी बात के लिए अतीव आनन्द हो रहा है कि बेलुड़ मठ की पुण्यभूमि के श्रीरामकृष्ण मन्दिर से संलग्न इस स्थान में यह महा सम्मेलन हो रहा है। यह मन्दिर श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रवर्तित धर्म-समन्वय का उज्ज्वल प्रतीक है।

स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में कहा था कि उनका पूरा जीवन ही एक विराट् धर्म महासम्मेलन है। शिकागो धर्म महासभा में सम्पन्न होने से बहुत पहले ही विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के व्यक्ति श्रीरामकृष्ण के साथ विभिन्न प्रकार के धर्म भावों की चर्चा के लिए दक्षिणेश्वर आते थे। समस्त धर्मों के मूल सत्य की उपलब्धि के रूप में उन्होंने समस्त धर्मों के आधारभूत सत्य की उपलब्धि के फलस्वरूप उन्होंने समस्त धर्मों तथा सम्प्रदायों के बीच गम्भीर एकता की अनुभूति की थी। उन्होंने मुसलमानों का आलिंगन किया था, ईसाइयों से हाथ मिलाया था, शाक्तों के साथ संगीत बौद्धों के साथ नृत्य और ब्राह्मों के साथ उपासना की थी।

इस होने वाली सभा नाम धर्म महा सम्मेलन है। १८९३ ई० में होने वाली धर्म महासभा में स्वामीजी के योगदान की स्मृति में इस सम्मेलन का आयोजन हुआ है। इस अवसर पर हमलोगों को याद रखना होगा कि चिराचरित पारस्परिक विचार-सभा के साथ इस महासभा का कोई सम्बन्ध नहीं है। सभा या गोष्ठियों में पण्डितलोग कितने ही सामान्य विषयों को लेकर विचार-विमर्श करते हैं। किन्तु इस प्रकार की महासभा में विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि अपने-अपने धर्म की स्थापना करते समय स्वाधीनता, समानता, और पारस्परिक मर्यादा बोध को बनाये रखते हैं। क्योंकि वे लोग यह जानते हैं कि सभी धर्मों के बीच अनेकों समानताएँ हैं।

इस प्रकार के कितने ही गम्भीर विषय हैं जिनपर सभी धर्मावलम्बियों को ध्यान देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम वर्तमान समय में दुराचार तथा हिंसा ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। मनुष्य के नैतिक तथा आध्यात्मिक पतन को रोकने के लिए संसार के सभी धर्मों का समान दायित्व है। दूसरी बात यह है कि पृथ्वी के सभी धर्मों का कर्त्तव्य है दरिद्र तथा पीड़ित लोगों की उन्नति के लिए

प्रयत्न करना। दुःख-दरिद्रता का जाति, धर्म तथा वर्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्त मनुष्यों के दुःख कष्टों को दूर करने का दायित्व सभी धर्मों को लेना होगा। इसके अतिरिक्त जो हजारों लाखों मनुष्य मूल लक्ष्य या चरम सत्य का अनुसन्धान कर रहे हैं, इनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। पृथ्वी के सभी धर्मों का दायित्व है इस तीव्र आध्यात्मिक स्पृहा की पूर्ति करना।

भारतवर्ष के समान देश में धार्मिक विरोध तथा साम्प्रदायिक संघर्ष के समान गम्भीर समस्या जो हमेशा रही है उसके प्रति सभी समझदार लोगों को शीघ्र ही ध्यान देने की आवश्यकता है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता का मुख्य स्वर जो सामंजस्य और समन्वय रहा है, वहाँ यह परिस्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यजनक है। सैकड़ों वर्षों से भारतवर्ष में विभिन्न जातियाँ तथा विभिन्न भाषाभाषी मनुष्य, दार्शनिक तथा धार्मिक सम्प्रदाय इस देश में मिस्र-सभ्यता की सृष्टि के लिए शान्तिपूर्वक प्रयास करते रहे हैं। यह स्पष्ट है कि केवल धर्म निरपेक्षता की नीति या उसके कानून बनाने से धार्मिक विरोध नहीं मिट सकते। सामंजस्य या समन्वय करने के लिए हम लोगों को और भी सकारात्मक तथा व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने यह दिखाया है कि धर्म ही धार्मिक कट्टरता का समाधान है। स्वामीजी ने धर्म को सभ्यता का मुख्य आधार माना है तथा उनका विश्वास था, धर्म ही विशेष रूप से भारतवर्ष का प्राण या संजीवनी शक्ति है। स्वामीजी के शब्दों में—प्रत्येक क्षेत्र में भारतवर्ष के सर्वाङ्गीण विकास के लिए सबसे पहली आवश्यकता है धार्मिक विकास या उन्नति। सामाजिक अथवा राजनैतिक चिन्तन के प्रवर्तन के पहले देश को आध्यात्मिक विचारों से आप्लावित करो।

हमारी मुख्य समस्या है कि धर्म के स्वरूप के विषय में अनभिज्ञता। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सभी धर्मों का एक उच्च लोकोत्तर भावकक्ष और सांस्कृतिक कक्ष होता है। भावराज्य के स्तर पर सभी धर्मों के बीच विभिन्न प्रकार की मौलिक एकता है। विश्व सभ्यता के इतिहास में यह अन्तर्दृष्टि ही श्रीरामकृष्ण देव का महत् योगदान है। संसार के समस्त धर्मों के इतिहास में श्रीरामकृष्ण ही सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं जिन्होंने सभी धर्मों की साधना की थी। साधनाओं के अन्त में उन्होंने पाया कि अन्तोगत्वा सभी पथों से उस चरम सत्य की उपलब्धि होती है। अपनी उपलब्धि से उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के तीन मूल सत्यों को जाना था—

(१) चरम सत्य एक है, जिसे विभिन्न धर्मों ने विभिन्न नाम दिए हैं।

(२) विभिन्न पथों से इसी सत्य तक पहुँचा जाता है, एवं (३) यह उपलब्धि ही मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य तथा सभी धर्मों का सार है।

ये तीन सत्य श्रीरामकृष्ण के धर्म समन्वय के आधार स्तम्भ हैं। विश्व के विभिन्न धर्मशास्त्रों में इन तत्वों को किसी-न-किसी रुप में पाया जाता है। सभी पथों से जिस सत्य का ज्ञान होता—इस सत्य की अनुभूति श्रीरामकृष्ण देव से पहले किसी ने नहीं की थी। अपने अनुभव से श्री रामकृष्ण ने धर्म समन्वय नीति के कार्यरूप में परिणत करने के लिए प्रचण्ड शक्ति का संचार किया था। समय-समय पर समस्त संसार में यह शक्ति क्रमशः स्पष्ट रूप से प्रकट होगी। शिकागो धर्म महासभा के अन्तिम अधिवेशन में स्वामीजी ने अपने भाषण के उपसंहार में यह भविष्यवाणी की थी।

श्रीरामकृष्ण ने केवल सभी धर्मों की लोकोत्तर एकता का उपदेश नहीं दिया था बल्कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक दिशाओं में किसी रूप से सामंजस्य स्थापित किया जाय, यह भी उन्होंने दिखाया है।

उन्होंने समस्त प्राणियों में भगवान को प्रत्यक्ष देखा था तथा जाति-वर्ण-धर्म तथा सम्प्रदाय को महत्त्व न देकर सभी लोगों को समान आदर दिया था। उन्होंने यह भी सिखाया कि प्रत्येक धर्मावलम्बी की दृष्टि से उनके धर्म को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। जब उन्होंने इसलाम धर्म की साधना की थी तब एक मुसलमान के समान व्यवहार किया था। जब इसाई धर्म की साधना की थी तब कुछ दिन तक काली मन्दिर भी नहीं गए। हमलोगों को इतना करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु हमलोगों को अपने धर्म की सीमित दृष्टि से अन्य धर्मावलम्बियों के धर्म का विचार नहीं करना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण ने इष्ट-निष्ठा, अपने धर्म अथवा नैतिक आदर्श के प्रति दृढ़ता और अनुराग को भी महत्त्व दिया था। विभिन्न धर्मों के सम्बन्ध में हमलोग पढ़ या जान सकते हैं तथा सबके प्रति हमलोग सहानुभूति सम्पन्न हो सकते हैं किन्तु प्रत्येक को अपने धर्म के प्रति एकान्तिक निष्ठा तथा दृढ़ता रखना आवश्यक है। जिस प्रकार स्वामीजी ने कहा है—छोटे पौधे के समान हमलोगों को अपनी सहज प्रकृति का पोषण करना होगा, साथ ही ज्ञान के प्रदीप तथा उसके परिवर्त्तन की प्रक्रिया को जानने के लिए अपना मन साफ रखना होगा।

केवल स्वामी विवेकानन्द ने ही श्रीरामकृष्ण के जीवन तथा उपदेशों का लोकोपयोगी अर्थ तथा उसकी अनन्त सम्भावनाओं को पूर्ण रूप से समझा था। उनकी वाणी का पूरे संसार में प्रचार करना ही स्वामी विवेकानंद के जीवन का मुख्य उद्देश्य था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के धर्म भाव का व्यवहारिक प्रयोग किया एवं उसका आधुनिक समयानुसार उपयोग किया था। १८९३ ई० में उन्होंने अपने गुरु के आदर्श तथा प्राचीन भारत के आध्यात्मिक दूत के रूप में शिकागो धर्म महासभा में अपने विचार व्यक्त किये थे।

शिकागो धर्म महासभा आधुनिक विश्व के सांस्कृतिक इतिहास के सन्धि क्षण का चिह्न है। मुख्यत: स्वामी विवेकानन्द की उपस्थिति के कारण यह सम्भव हुआ था। इस सम्मेलन में सभी धर्म-मतावलम्बियों को समान मर्यादा के साथ स्वीकार किया गया था। किन्तु यह बात है कि सभी धर्मों को एक समान सत्य नहीं माना गया था। किन्तु सभी धर्म चरम लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। इसलिए ये सभी समान रूप से सत्य या सार्थक हैं धर्म महासभा को स्वामी विवेकानन्द की यही देन है और स्वामीजी ने इस आदर्श को पाया था अपने गुरु से। विश्व के मनीषियों ने क्रमश: इस विश्वास को स्वीकार कर लिया था। यद्यपि यह सम्मेलन छोटा है। किन्तु संसार के विभिन्न देशों से बहुत से विशिष्ट धर्मनेताओं तथा विद्वानों ने इसमें भाग लिया है। इनकी उपस्थिति से हमलोग धन्य हुए हैं। इनकी उदारता, सज्जनता तथा सहयोग के भाव को हम लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं तथा इन लोगों ने हमलोगों के लिए अपना जो मूल्यवान समय दिया हैं इसके लिए हमलोग हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अपनी वाणी को विराम देते हुए मैं कहता हूँ, भगवान श्रीरामकृष्ण माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के नाम से इस सम्मेलन का उद्घाटन हुआ है। इन लोगों ने हमलोगों के पारस्परिक विश्वास एकता तथा शान्ति के आलोक को नवीन दिशा दी है।

मैं प्रार्थना करता हूँ सभी सम्मिलित लोगों पर उनके आशीष की वृष्टि हो। हमलोगों की यह धर्म चर्चा विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच अधिक-से-अधिक सहानुभूति, सदिच्छा तथा एकता की वृद्धि में सहायक हो।

श्रीरामकृष्ण की प्रथम प्रस्तर प्रतिमा

—स्वामी निर्वाणानन्द

(स्वामी निर्वाणानन्द रामकृष्ण मठ के परम उपाध्यक्ष थे। लोग उन्हें आदर से सूर्य महाराज के नाम से पुकारते थे। प्रस्तुत लेख बंगला पत्रिका उद्बोधन, ६७ वर्ष, ६६-६७ में प्रकाशित और 'ब्रह्मानन्द-सेवक निर्वाणानन्द' नामक पुस्तक पृ० २३७-३९ में संकलित है। अनुवादक —डॉ० केदार नाथ लाभ)

१९१८ ई० का शीतकाल। श्री श्री महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) उस समय बलराम मन्दिर में हैं। मैं सेवक होने के नाते वहीं हूँ। उन दिनों महाराज की दीक्षिता शिष्या भवानीपुर निवासी श्री अचल कुमार मैत्र (Solicitor) महोदय की भक्तिमती धर्मपत्नी बीच-बीच में महाराज का दर्शन करने के विचार से बलराम-मन्दिर में आतीं एवं वहाँ से श्री श्रीमाँ के मकान (मायेर बाड़ी) उद्बोधन में जाती। उस भक्तिमती महिला को शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) बहुत स्नेह करते। कुछ दिनों के उपरान्त उक्त महिला के मन में भगवान् श्रीरामकृष्ण की एक संगमरमर की मूर्ति बनवाने का प्रबल भाव हुआ और इस सम्बन्ध में शरत् महाराज को अपना परामर्श देने की उन्होंने प्रार्थना की। शरत् महाराज ने इस विषय में उन्हें विशेष रूप से उत्साहित किया। उन दिनों कलकत्ते के झाउतला में मिस्त्री के रूप में एक महाराष्ट्री प्रसिद्ध मत्तिकार रहता था। उस महिला ने उस मूत्ति निर्माता के सामने उपस्थित होकर अपनी इच्छा के अनुरूप संगमरमर की प्रतिमा के निर्माण के लिए उसे नियुक्त किया। मूर्ति शीघ्र तैयार हो जाय इसके लिए उन्होंने उससे विशेषरूप से अनुरोध भी किया। वह महिला बीच-बीच में आकर शरत् महाराज को यह बता जाने लगी कि काम कितना आगे बढ़ा है। श्रीरामकृष्ण के मिट्टी के साँचे (Clay-model) का कार्य पूरा हो जाने पर उक्त भद्रमहिला ने महाराज से मूत्तिकार के पास जाकर मॉडेल के सम्बन्ध में सम्मति प्रदान करने का निवेदन किया। उसके कुछ ही दिनों बाद एक दिन प्रातः-काल शरत् महाराज ने बलराम मन्दिर आकर श्रीरामकृष्ण को इस संगमरमर की मूर्ति के निर्माण का क्रमवार विवरण राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मनन्द) के समक्ष प्रस्तुत किया तथा वे स्वयं उस मॉडेल के प्रति अपनी सम्मति प्रदान कर आवें, इसके लिए उनसे विशेष रूप से अनुरोध किया। राजा महाराज ने शरत् महाराज से सारी घटनाएँ सुनने के पश्चात् थोड़ी देर मौन रहकर कहा—'शरत्, मैं ठाकुर की किस मूत्ति के प्रति सम्मति दूँगा ? मैंने तो एक दिन में ही ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के अनेक रूप देखे हैं। कभी वे शीर्ण रुग्ण अवस्था में ध्यान मग्न हो चुपचाप बैठे हैं, फिर कुछ ही देर हाथों से ताली बजाते हुए कीर्तन करते-करते भाव विह्वल हो गये हैं। फिर कभी समाधिमग्न ! वह एक अद्भुत् दृश्य था। मुखमंडल से मानो स्वर्गीय आनन्द फट रहा हो और शरीर से दिव्य ज्योति विकीर्ण हो रही है। फिर कभी दक्षिणी बरामदे में स्वाभाविक की अपेक्षा अधिक सबल, बलिष्ठ और दीर्घ शरीर से मजबूत कदमों से एक छोर से दसरे छोर तक भावोन्मत्त हो टहल रहे हैं।' शरत् महाराज राजा महाराज के मुख से निकले श्रीरामकृष्ण

के विभिन्न रूपों का अपूर्व वर्णन सुनकर स्तम्भित हो गये और विनीत भाव से बोले—'महाराज, ठाकुर ने अपनी जिस छवि को देखकर कहा था, "घर-घर में इसकी पूजा होगी" उसी छवि पर सम्मति देनी होगी।' सहास्य मुख से महाराज ने कहा—'ठीक है जाऊँगा, दिन तय करो।' उसी दिन अपराह्न में मूर्त्तिकार की शिल्पशाला (Studio) में महाराज के जाने का व्यवस्था हुई एवं सभी यथासमय वहाँ उपस्थित हुए। महाराज के साथ शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द), महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द), योगीन-माँ, गोलाप-माँ तथा कई एक साधु वहाँ गये। स्टूडियो (शिल्पशाला) में प्रवेश करते ही महाराज ने मॉडेल का विशेष रूप से निरीक्षण किया और मूर्त्तिकार को बुलाकर कहा—'देखो, तुमने ठाकुर को मानो थोड़ा कूबड़ बना दिया है।' इस कथन के उत्तर में शिल्पी ने कहा कि इस मुद्रा में बैठने पर स्वभावतः मेरुदण्ड थोड़ा टेढ़ा हो जाता है। इस पर महाराज ने कहा—'मैंने ठाकुर को कभी भी कमर टेढ़ी कर बैठते नहीं देखा। तुम जो कहते हो, वह साधारण आदमियों के लिए प्रयोग करने योग्य है। ठाकुर की बाँहें आजानुलम्बित थीं, अतएव, उनके लिए इस रूप में होने का कोई कारण नहीं है।' इसके बाद महाराज ने मूर्तिकार का ध्यान ठाकुर के कान की ओर आकृष्ट किया- 'देखो, सबके कान भौंहों के ऊपरी हिस्से की बगल से शुरू होते हैं।' ठाकुर के कान भी तुमने उसी तरह बनाये हैं। किन्तु ठाकुर के कान आँख के नीचे के समकक्ष से आरम्भ होते हैं।' महाराज के भावपूर्ण वर्णन से मूर्त्तिकार के साथ ही सभी स्तम्भित हुए। महाराज के निर्देश के अनुसार मॉडेल (नमूने) को सुधारने के लिए सहमत होकर मूर्त्तिकार ने कहा, 'आपलोग सात दिनों के बाद फिर आइए, मैं सब ठीक करके रखूँगा।' निर्धारित दिन को महाराज पुनः दलबल के साथ मूर्त्तिकार की शिल्पशाला (स्टूडियो) में उपस्थित हुए और संशोधित मॉडेल (प्रतिरूप) देखकर परम प्रसन्नता व्यक्त की और कहा—'इस बार ठीक हुआ है।' साथ गये लोगों ने भी उस दिन मॉडेल को देखकर ठाकुर की जीवन्त सत्ता का अनुभव किया था। प्लास्टर ऑफ पेरिस में ढलने के बाद हू-ब-हू उतरा था।

सुदक्ष मूर्त्तिकार अपने कला-कौशल से संगमरमर की मूर्त्ति में भी मॉडेल (प्रतिकृति) के हू-ब-हू भाव को उतार देने पर तुला था, किन्तु प्रतिमा में स्थान-स्थान पर, खासकर मुखमंडल पर, अनेक छोटी-छोटी बिन्दियों के काले-काले धब्बों के निकल आने से दिव्यभावघन आनन्दमय मुख विकृत दिखता था।

प्रतिमा से धब्बों को मिटाने या दूर करने की कोई सम्भावना नहीं देखकर मूर्त्तिकार स्वयं बड़ा दुःख महसूस कर रहा था। तदुपरान्त उसने यह विचार व्यक्त किया कि एकमात्र रंग और कूची के द्वारा अंगराग कर देने से सारे काले धब्बे ढँक जाएँगे और मूर्त्ति का सही-सही भाव प्रकट हो जाएगा। हाँ, हर २-३ वर्षों पर एक बार ऐसा ही अंगराग कराना होगा। मूर्त्तिकार की बातें उक्त भक्तिमती महिला को बिल्कुल पसन्द नहीं पड़ी, इसके अतिरिक्त श्री श्रीठाकुर की यह संगमरमर की प्रतिमा सुन्दररूप से निर्मित हो बेलुड़ मठ में प्रतिष्ठित और नित्य पूजित होगी, यह महती इच्छा पूरी नहीं हुई, यह सोचकर वे अत्यन्त मर्माहत हो गयीं। प्रतिमा उसी अवस्था में मूर्त्तिकार की शिल्पशाला (स्टूडियो) में ही रह गयी। बाद में अंगराग कराकर (मूर्त्ति को रंगकर) मूर्त्ति को काशीधाम ले जाया गया। २४ फरवरी १९३६ ई० को काशीधाम में श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम के नवनिर्मित मन्दिर में संगमरमर की प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई। श्री श्रीठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के अंतरंग पार्षद स्वामी विज्ञानानंद महाराज ने इस प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने के बाद कहा था : 'मानो ठीक-ठीक श्रीरामकृष्ण ही बैठे हुए हैं।"

अमृतवापी के शिल्पी : श्रीरामकृष्ण

—स्वामी लोकेश्वरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर
कलकत्ता।

श्रीरामकृष्ण एक 'अनचीन्हा' वृक्ष हैं। वे कौन या क्या है, कहना कठिन है। उनकी तुलना नहीं है। वे अतल, दिग्दिगन्तहीन, असीम हैं। विद्यासागर को श्रीरामकृष्ण को कहा था, सब जूठा हो गया है, किन्तु ब्रह्म जूठे नहीं हुए। वे अवाङ्मनसोगोचरम् हैं। विद्यासागर बात सुनकर मुग्ध हो गये थे। श्रीरामकृष्ण भी वही—वाक्यमनातीत, ब्रह्म हैं।

सरसरी दृष्टि से वे एक सामान्य मनुष्य हैं– गँवार, गरीब, अनपढ़। मातृभाषा बंगला का भी भलीभाँति उच्चारण नहीं कर पाते थे। 'नरेन' को 'लरेन' कहते थे। व्याकरण अशुद्ध। 'आपलोग क्या कहते हो?'– यही उनके व्याकरण का नमूना है। फिर शायद तुतलाते भी थे। किन्तु उनकी वाणी? वाणी नहीं; अमृत। जिसने सुनी है, वही विमोहित हुआ है। प्रतापचन्द्र मजूमदार, नामक एक सज्जन ईसामसीह के भक्त ब्रह्मसमाजी थे। अपनी भाषा में 'पाश्चात्य भावापन्न'। स्वयं एक विख्यात वक्ता। उन्होंने अनेक विश्वविख्यात वक्ताओं के व्याख्यान सुने हैं। किन्तु, उनमें से कोई भी श्रीरामकृष्ण की वाणी का संस्पर्श नहीं कर पाये। प्रतापचन्द्र घंटों श्रीरामकृष्ण की वाणी मंत्रमुग्ध हो, सुनते हैं। उनके मतानुसार श्रीरामकृष्ण एक अद्वितीय वाक्-शिल्पी हैं। जैसी विषयवस्तु वैसा शब्दचयन। जहाँ जो शब्द उपयुक्त हो उससे थोड़ा भी इधर-उधर नहीं। इसके साथ ही उपमा, रसिक्त कहानियाँ, गाने भी। अचिन्त्य सेनगुप्त ने कहा है, उपमा में श्रीरामकृष्ण कालिदास को भी पराजित कर दे सकते हैं। अद्भुत् वक्ता हैं वे। वक्ता नहीं, प्रवक्ता। वेदान्त के गम्भीर तत्त्वों को अमृत रसायन में परिणत कर पिपासित प्राणियों को उन्होंने परितृप्त किया है—सरल छन्दोमय भाषा में। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण ने नयी बंगला भाषा की सृष्टि की है। दो-चार रेखाओं से अच्छे शिल्पी एक पूरी तस्वीर बना डालते हैं। श्रीरामकृष्ण ऐसा ही करते हैं। उनको वाणियों को श्रीराम, अर्थात् श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (मास्टर महाशय) ने 'श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत' में संकलित कर दिया है। ये ग्रन्थ (तीन खण्ड) एक साथ ही साहित्य, दर्शन और इतिहास हैं। महाकाव्य भी इन्हें कहा जा सकता है। अवतार पुरुष की वाणी और चित्र पहली बार मनुष्य के द्वारा अविकृत रूप से प्रस्तुत हुए हैं।

अपने बड़े भाई रामकुमार के कहने पर श्रीरामकृष्ण कलकता आये। उस समय उनकी उम्र १७-१८ वर्ष की थी। बड़े भाई की इच्छा थी कि श्रीरामकृष्ण उनके टोल (पाठशाला) में पढ़े-लिखें और टोले-मुहल्ले गृहस्थों के घर में गृह-देवता की पूजा-अर्चना कर कुछ अर्थ उपार्जन करें। द्वितीय प्रस्ताव पर श्रीरामकृष्ण को कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु टोल में पढ़ने के प्रस्ताव पर बिल्कुल नाराज थे। बड़े भाई ने अपने छोटे भाई की आपत्ति देखकर फिर दबाव नहीं डाला। फिर श्रीरामकृष्ण अपने भावी

जीवन की ओर चल पड़े। गाँव में रहने पर श्रीरघुवीर की पूजा करना और टोले-टोले घूमने निकलना। यहाँ भी वैसा ही—घर-घर जाकर पूजा करना और घूमने निकलना। सर्वत्र समादार होता। किस्से-कहानियाँ, गीत-नाद और हास-परिहास। फिर भी अत्यन्त सरल, परम पवित्र ऐसा किसी ने कभी भी देखा नहीं। राजकुमार खुश और श्रीरामकृष्ण भी प्रसन्न।

किन्तु इसमें बाधा खड़ी कर दी रानी रासमणि ने। उन्होंने दक्षिणेश्वर में माँ काली, राधा-गोविन्द और शिव के मन्दिर बनवाये हैं। उनकी अभिलाषा है कि माँ काली और राधागोविन्द के मन्दिर में अन्न का भोग निवेदन कर पूजा हो। किन्तु एक भी ब्राह्मण इसके लिए तैयार नहीं है। शूद्र के द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा करने को भी वे लोग राजी नहीं हैं। अन्न भोग देना तो दूर की बात है। अन्त में दबाव पड़ने पर रामकुमार सहमत हुए, किन्तु अनेक शर्तों पर। रामकुमार कई वर्षों तक पुजारी के पद पर बने रहे। बुढ़ापे के कारण अवकाश ग्रहण करने पर श्रीरामकृष्ण ने उनका स्थान ग्रहण किया।

किसी एक व्यक्ति के साथ किसी एक देश का भाग्य किस प्रकार बँध जाता है, उसे अब हम देखेंगे। हम देखेंगे कि किस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने भारत में अंगरेजियत (यूरोपियनों के आचारणों की नकल) की व्याधि को रोक दिया। कामारपुकुर में रहने के समय ही श्रीरामकृष्ण को भाव या समाधि हुआ करती थी। श्रीरामकृष्ण माँ काली का ध्यान करते-करते ही समाधिस्थ हो जाते। स्कॉटिश चर्च कॉलेज के प्रिन्सिपल हेस्टी साहब ने श्रीरामकृष्ण को समाधिस्थ अवस्था में देखा करते थे। कब देखा था, यह कोई नहीं जानता। उन्होंने एक अँग्रेजी कविता पढ़ाने के क्रम में यह बात छात्रों से कही थी। उन्होंने कहा था, "समाधि क्या चीज है, यह यदि तुमलोग जानना चाहते हो तो दक्षिणेश्वर जाकर श्रीरामकृष्ण को देख आओ। वे एक समाधिवान महापुरुष हैं।" इन छात्रों में नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानंद) नामक एक छात्र थे। बाद में उन्होंने ही एक दिन जाकर श्रीरामकृष्ण से जिज्ञासा की---'आपने क्या ईश्वर को देखा है?' यह प्रश्न केवल नरेन्द्रनाथ का ही नहीं था। यह प्रश्न अँग्रेजी शिक्षा में शिक्षित सम्पूर्ण भारतवर्ष के मनुष्यों का था। मेकाले चाहते थे कि उनके द्वारा प्रवर्तित शिक्षा-व्यवस्था के प्रभाव से समग्र भारतवासी अँग्रेज हो जाएँगे। डी० एल० राय के एक गीत में है—'हम सब साहब की तरह सज्जित होना पसन्द करते हैं।' अँग्रेजों का सब कुछ अच्छा है। धर्म, भाषा, संस्कृति—का प्रचलन था। भारतवर्ष में भी वही लहर आ पहुँची थी। इसीसे यह प्रश्न किया गया था—'आपने ईश्वर को देखा है?' यह मानो नवीन भारत का प्राचीन भारत को चैलेंज (चुनौती) था। श्रीरामकृष्ण प्राचीन भारत थे, क्योंकि वे ईश्वर में विश्वास करनेवाले और साहबी प्रभाव से बिल्कुल मुक्त थे। किन्तु प्राचीन भारत के अग्रणी श्रीरामकृष्ण ने क्या उत्तर दिया? उन्होंने कहा—'हाँ, मैंने निश्चय ही ईश्वर को देखा है। तुम्हें जिस प्रकार देख रहा हूँ वैसे ही देखा है; बल्कि और भी स्पष्ट रूप से देखा है। और यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूं।' यह मानो प्राचीन भारत का प्रत्यावर्तित चैलेन्ज (चुनौती) था। निश्चय ही नरेन्द्रनाथ ने इतनी बड़ी आशा नहीं की थी।

नरेन्द्रनाथ की भाँति कई तरुण श्रीरामकृष्ण के पास आये। केवल तरुण ही नहीं, अनेक वृद्धजन भी आये। सभी अँग्रेजी शिक्षा में शिक्षित। धनी, प्रभावशाली और समाज के प्रमुख शक्तिशाली व्यक्ति। इनमें सबसे उल्लेख योग्य थे केशवचन्द्र सेन। वस्तुतः केशवचन्द्र ने ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में लिखकर श्रीरामकृष्ण को कलकत्ते के शिक्षित समाज में परिचित करा दिया। उन

लेखों को पढ़कर झुण्ड के झुण्ड लोग श्रीरामकृष्ण के पास आने लगे—सभी मतों एवं सभी वयसों के लोग। 'वचनामृत' के पन्ने उलटते ही यह जाना जा सकता है। श्रीरामकृष्ण अपनी वाणी के वल पर ही चलते हैं। प्रसंग एक ही है— ईश्वर। इसी ईश्वर को लेकर ही कितने ही तर्क-वितर्क। श्रीरामकृष्ण ने कहा—'मधुमक्खियाँ कब तक भन्-भन् करती हैं? जब तक वे फूल पर बैठकर मधु-पान नहीं करने लगतीं। मधु पाते ही वे चुप हो जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्य जबतक ईश्वर-लाभ नहीं करता तभी तक ईश्वर के सम्बन्ध में तर्क करना उसे अच्छा लगता है।'

श्रीरामकृष्ण मानो उसी प्राचीनकाल के ऋषि हैं जिन्होंने कहा था, हे अमृत के पुत्रों, तुमलोग मेरे पास आओ, मैंने जो ज्ञान-लाभ किया है उसे मैं तुमलोगों को दूँगा। इस ज्ञान के द्वारा तुमलोग अमृतत्व को प्राप्त करोगे।' जो लोग उनके पास आये, पूर्णकाल हो वापस लौटे। उनलोगों ने फिर अपने बन्धु-बान्धवों से कहा, 'जाओ, वहाँ। वहाँ अमृत भाण्ड है। दो हाथ भरकर ले आओ।'

श्रीरामकृष्ण के प्रभाव से हमलोगों का पाश्चात्य-मोह दूर-दूर होने लगा। भारत का जो रत्नभण्डार है, उस ओर हमलोगों की दृष्टि गयी। भारत का नवजागरण शुरू हुआ। वाद में स्वामी विवेकानंद की फटकार और भर्त्सना से यह जागरण और भी तेजगति से हुआ।

श्रीरामकृष्ण का सबसे बड़ा अवदान है—'शिव भाव से जीव सेवा, और जितने मत उतने पथ'—यही दो वाणियाँ। उन्होंने किसी साम्प्रदायिक धर्म का प्रचार नहीं किया। जो सभी धर्मों का है, उसी सत्य का प्रचार उन्होंने किया है। श्रीरामकृष्ण सभी धर्मों के अनुगामी हैं और सभी धर्मों के गुरु भी हैं।

(बंगला से हिन्दी अनुवादक—डॉ केदार नाथ लाभ)

●

ईश्वर एक हैं, परन्तु उनके भाव विविध हैं। जिस प्रकार घर का प्रमुख व्यक्ति एक ही होता है परन्तु वह किसी का पिता, किसी का भाई, तो किसी का पति लगता है उसी प्रकार भाव भिन्न-भिन्न होते हुए भी ईश्वर एक हैं।

—श्रीरामकृष्ण

रामकृष्ण मिशन और महाकवि निराला

—श्री अजय कुमार
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

सुर्ज कुमार तेवारी, सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला और महाप्राण निराला—ये चारों क्रमशः विकसित होते सम्बोधन उस दुर्द्धर्ष महाकवि के हैं, जो अपने व्यक्तित्व की विराटता, भव्यता, दिव्यता, फक्कड़पना, अतिशय विनम्रता, साथ ही अति स्वाभिमानी, कल्पनाजीवी, पर यथार्थ से सर्वाधिक परिचय, अहम्मन्यता—में तुलसी और कबीर के बाद, विशेषकर हिन्दी साहित्य में, अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानता। निराला के व्यक्तित्व का द्वन्द्व एक साथ ही उन्हें गृहस्थ और संन्यासी, योगी और भोगी तथा संत और परिवार के कठिन स्नेह-सूत्र में बँधे मुखिया के रूप में विश्व-साहित्य में अद्वितीय सिद्ध करता है।

जैसा मैंने कहा, निराला एक साथ ही गृहस्थ और संन्यासी दोनों थे। तहसील-वसूली की नौकरी करते हुए निराला ने महिषादल में रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द के सर्वप्रथम दर्शन किए। पिता श्री रामसहाय तेवारी, पत्नी मनोहरादेवी, पाँच छोटे बच्चों के पिता बड़े भाई बदलू प्रसाद और उनकी पत्नी, दूध पीता भतीजा, काका रामलाल तेवारी—अत्यल्प काल में प्राणाधिक प्रिय इतने स्वजनों की मौत से स्तब्ध थे निराला। उनके व्यथित हृदय को वैराग्योन्मुख करने के लिए इतना प्रहार काफी था। निराला अपने घर गढ़ाकोला से ससुराल डलमउ गये। गंगा किनारे रात-रात भर वह श्मशान में घूमा करते जहाँ निराला की 'रत्नावली, मनोहरा देवी की चिता जली थी।

निराला की इसी मनःस्थिति में महिषादल में स्वामी प्रेमानन्द का शुभागमन हुआ। श्री रामकृष्णदेव ने अपनी सहज पवित्र साधना से बंगाल के धार्मिक सामाजिक जीवन में जबरदस्त क्रांति कर दी थी; उन्हीं के परम शिष्य, जगत्-विजेता स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी प्रेमानन्द ने महिषादल में अपने चरण-कमल रखे थे।

'बंगाल में पालित पश्चिमीय युवक' निराला ने प्रेमानन्द महाराज के गले में बहुत-सी मालाएँ पहना दीं। स्वामी जी ने हँसकर कहा, "तुम लोगों ने तो मुझे काली बना दिया।" उत्सव के पश्चात् स्टेट के मैनेजर स्वामी जी को अपने निवास-स्थान ले गए। निराला अपने सर्वप्रिय ग्रंथ तुलसीकृत रामायण ले गए थे। स्वामी जी की आज्ञा से वह मधुर कण्ठ से रामायण का पाठ करने लगे। निराला ने पढ़ा—"श्याम तामरस दाम शरीरम्। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरम्।" निराला के कण्ठ में मानो साक्षात् सरस्वती का वास हो गया हो। भावावेश में पाठरत निराला की अनुभूति में स्वामी जी और महावीर एकमेक हो गए।

मैनेजर कायस्थ थे। स्वामी प्रेमानन्द भी संन्यासी होने के पूर्व कायस्थ ही थे। ब्राह्मण-कायस्थ सब एक ही पंक्ति में भोजनार्थ बैठे। सबसे ऊँचे आसन पर स्वामी जी को बैठाया गया। मैनेजर ने गर्व

से कहा—"ब्राह्मण हमारी गिनती शूद्रों में करते थे, परस्वामी विवेकानन्द और स्वामी प्रेमानन्द जैसे महापुरुषों ने हमें धन्य कर दिया। अब हम भी समाज में ब्राह्मणों की ही तरह सर उठाकर रहते हैं।" इस पर स्वामी जी ने कहा—"संन्यासी होने पर देश-काल-पात्रता से हम दूर हो गए हैं। हमारा जीवन रामकृष्णमय है और सभी जनों के लिए है।" निराला को नया अनुभव हुआ। उन्हें लगा— ये संन्यासी कितने महान् हैं। इनके लिए ब्राह्मण-चांडाल, श्रेष्ठ-पतित, राजा-रंक—सभी समान हैं। ये मनुष्य का आभ्यंतर देखते हैं, बाह्य रूप नहीं। इनके चेहरे पर कैसी अपूर्व शांति है। इन लोगों ने लोकसेवा के लिए संसार का माया-मोह त्याग दिया। रामकृष्ण परमहंस ने तो साक्षात् ईश्वर के दर्शन किए थे। उन्हें भी ईश-दर्शन हो सकते हैं। युवा सुर्ज कुमार को नया संस्कार मिला और यह संस्कार आजीवन उसके व्यक्तित्व का एक मुख्य भाग रहा। वर्षों बाद उन्होंने एक लम्बी इतिवृत्तात्मक कविता लिखी—"स्वामी प्रेमानंद जी महाराज'।

निराला का विरागी मन उर्ध्वगामी हुआ। रामकृष्णदेव के अनन्य भक्त श्यामापद मुखोपाध्याय से निराला का परिचय हुआ। परिचय मित्रता में बदला। उनके साथ अक्सर निराला वेदांत-चर्चा करते। रामकृष्ण परमहंस पर लिखा खूब पढ़ते निराला। विवेकानंद-साहित्य उन्होंने काफी कुछ पढ़ डाला। विशेषकर, रामकृष्ण के साधक व्यक्तित्व का चमत्कारी रूप उन्हें खूब प्रभावित करता। साधना ही परमपद-लाभ का रहस्य-विंदु है—वे अनुभव करते।

अभी तक निराला के कवि-रूप का जन्म नहीं हुआ था। ये उनके भावी कवि-व्यक्तित्व-निर्माण के प्रारम्भिक दिन थे। सन् '२० में महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया। सर्वत्र देश में राष्ट्रीय भावना व राष्ट्रीय गीतों की धूम थी। निराला ने अपनी प्रारम्भिक कविता लिखी—'जन्मभूमि'

"बंदू मैं अमल-कमल—
चिर सेवित चरण-युगल—
शोभामय शांति निलय पाप-ताप हारी,
मुक्तबंध, घनानंद मुद मंगलकारी।
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी॥"

अक्तूबर, सन् '२० की सरस्वती में निराला का प्रथम गद्य लेख प्रकाशित हुआ—'बंग भाषा का उच्चारण'। छपवाने वाले थे सरस्वती के अवकाशप्राप्त संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। निराला ने द्विवेदी जी को अपना परिचय देते हुए लिखा—"... जीवन का लक्ष्य निरे बाल-काल से है परमपद-लाभ। रामकृष्ण मठ के संन्यासी मुझ पर विशेष कृपादृष्टि रखते हैं। स्वामी प्रेमानंद ने कहा था—तुम्हारा विचार ठीक है।"

निराला की बेलूड़ मठ-यात्रा प्रारम्भ हुई। वे अक्सर संन्यासियों के साथ दरिद्रनारायणों की सेवा के लिए जाते, स्वामी प्रेमानंद के दर्शन तो करते ही थे।

सन् '२१ में रामकृष्ण मिशन के प्रमुख विद्वान संन्यासी स्वामी माधवानंद का कानपुर में आगमन हुआ। स्वामी जी अद्वैतमत के प्रचार के लिए हिन्दी में एक मासिक पत्र निकालना चाहते थे। द्विवेदी जी के विषय में जानते थे। द्विवेदी जी भी उन दिनों कानपुर में ही जुही नामक स्थान में रहते थे। स्वामी जी जुही गए और द्विवेदी जी से योग्य सम्पादक के संबंध से सलाह माँगी। निराला इन दिनों अनुकूल काम की तलाश में थे और द्विवेदी जी इससे परिचित थे। उन्होंने स्वामी जी को निराला का नाम सुझाया क्योंकि वे हिन्दी के साथ-साथ बंगला पर भी अच्छी पकड़ रखते थे और रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क में भी थे।

स्वामी माधवानंद ने निराला को अंग्रेजी में सूचित किया कि प्रमाण-पत्र सहित अपनी योग्यता के संबंध में लिखिये। निराला ने बंगला में उत्तर दिया कि बंगाल में रहते हुए श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद का साहित्य पढ़ चुका हूँ। बेलूड़ मठ में दरिद्रनारायण की सेवा कर चुका हूँ। स्वामी प्रेमानंद से आशीर्वाद पा चुका हूँ आदि। स्वामी माधवानंद निराला से प्रभावित हुए, पर पचास रुपये मासिक वेतन की मांग आड़े आ गयी। स्वामी जी इतना पैसा देने की स्थिति में न थे।

निराला बेकारी की हालत में पुनः महिषादल आ गए। लाचारी में पुनः उसी लगान-वसूली वाले काम में लगना पड़ा। इधर स्वामी माधवानंद ने अपने पत्र का प्रकाशन 'समन्वय' नाम से प्रारम्भ कर दिया। निराला की याद उन्हें थी। उन्होंने समन्वय की पहली प्रति निराला को भेजी तथा लेख भेजने की प्रार्थना की। निराला ने परिश्रम-पूर्वक एक लेख लिखा– 'भारत में श्री रामकृष्णावतार'। उन्होंने लिखा कि मनुष्य का लक्ष्य है 'ईश्वर-प्राप्ति'। यूरोप आज भोगोन्मुख है। इसी भोग में फँसे मानव-मात्र का उद्धार करने के लिए श्री रामकृष्ण परमहंस का अवतार हुआ है। संन्यासियों को निराला का लेख पसंद आया। उन्होंने निराला को 'समन्वय' में कार्य करने के लिए बुला लिया। वेतन का हिसाब तय न था। स्वामी माधवानंद तथा अन्य संन्यासियों के साथ निराला उद्बोधन-कार्यालय, बाग बाजार में रहते, साथ भोजन करते व संन्यास्योचित सादगीपूर्ण जीवन बिताते। समन्वय में वे लेख-कविता—सब कुछ लिखते।

बंगला में श्री रामकृष्ण की जीवनचर्या चार खंडों में एक प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई—'श्री रामकृष्णवचनामृत'। निराला ने इसका अनुवाद करना शुरू किया और इसे समन्वय में धारावाहिक रूप प्रकाशित करवाया। इसके अतिरिक्त 'एक दार्शनिक' के नाम से निराला ने समन्वय में कई लेख लिखे। रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क से जो गम्भीर चिन्तन निराला ने किया, उसी का परिणाम था वह प्रसिद्ध लेख जो उन्होंने समन्वय में लिखा—'तुलसीकृत रामायण में अद्वैततत्त्व'। निराला सर्वत्यागी, रंग-रूप में अत्यंत साधारण, समाज के साधारण, अंत्यज, अस्पृश्य, दरिद्र, दुखीजनों के सच्चे प्रेमी, अभिजात्य से कोसों दूर, सहज, सरल और प्रेम-पूर्ण भाषा में जनसामान्य के उपदेशक श्री रामकृष्णदेव की तुलना महात्मा तुलसीदास से करते और दोनों में अपूर्व समता पाते।

उन्हीं दिनों निराला की मुलाकात स्वामी सारदानंद से हुई। विशाल आकार, आँखों में अपूर्व तेज। निराला उनसे जितना भयभीत होते, उतना ही उनकी तरफ खिंचते। स्वामीजी के पास बैठकर, उनकी बातें सुनकर उन्हें अमित सुख की प्राप्ति होती, मन को संतोष होता।

एक बार निराला के माथे में बहुत पीड़ा थी। चुपचाप स्वामी जी के पास गए और झुककर प्रणाम किया। स्वामी जी समझ गए। निराला लिखते हैं—..... उन्होंने एक हाथ से मेरा माथा थाम लिया। मेरे कपाल के दोनों बगल से अपना अँगूठा और मध्यमा दबाकर खींचा। मेरा दर्द बिलकुल मिट गया, शरीर हल्का हो गया, उतनी .... मुझे जीवन-भर कभी नहीं मिली।" ('श्रीमत् स्वामी सारदानंद जी महाराज से वार्तालाप' नामक निबंध, अक्तूबर-नवम्बर १९२७ की समन्वय में प्रकाशित)।

एक बार निराला ने स्वामी सारदानंद से कहा कि उनके साथ स्वप्न में देवता बातचीत करते हैं। स्वामी जी ने हँसकर कहा—"बाबूराम महाराज से भी करते थे। बाबूराम महाराज, अर्थात् स्वामी प्रेमानंद जी महाराज।

निराला स्वयं को सरस्वती-पुत्र मानते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि मैं स्वामी सारदानंद महाराज के कार्यों के लिए निमित्त-मात्र हूँ। मैं जो भी करता हूँ, उन्हीं की इच्छा से। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि स्वामी सारदानंद जी ने निराला को गुरुमंत्र दिया था—कंठ में उँगलियों से लिखकर। क्या लिखा, निराला नहीं समझ सके; पर ऐसा अनुभव हुआ, मानो किसी गहरी प्रभाव छाया में वे डूबते जा रहे हों।

कलकत्ते के २३, शंकर घोष लेन में एक प्रेस था—बालकृष्ण प्रेस और उसके मालिक थे महादेव प्रसाद सेठ। इसी प्रेस में समन्वय छपता था। आगे चलकर निराला का सम्पर्क इन्हीं से हुआ और तत्पश्चात् 'मतवाला-मंडल' की आधारशिला रखी गयी और बाद में जिसने एक इतिहास बनाया।

निराला मोहमाया के बंधन तोड़कर पूर्ण संन्यासी न बन सके। परिवेशगत सांसारिक चुनौतियाँ, बड़े असहाय-निर्धन कुटुम्ब के प्रति जिम्मेवारी की तीव्र भावना ने निराला के व्यक्तित्व के एक हिस्से को सद्गृहस्थ ही बनाए रखा। राहुल सांकृत्यायन की तरह वे एक झटके में परिवार का बंधन न तोड़ सके। शेक्सपियर के हैमलेट में जैसे प्रिंस होने की भावना के साथ ही वैराग्य-भावना भी प्रबल है, वैसे ही निराला की भी इच्छा थी कि काश। उनका जन्म किसी बड़े घराने में या लखपति के घर हुआ होता। वे अक्सर कहते थे कि यदि मैं भी प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती होता तो लोग मुझे भी महान् कहते। निराला के अन्यतम जीवनीकार डॉ० रामविलास शर्मा ने निराला की मृत्यु के बाद तथ्य-संग्रह के उद्देश्य से बेलूड़ मठ जाकर स्वामी माधवानंद एवं अन्य संन्यासियों से भेंट की थी। उन्होंने स्वामी माधवानंद से पूछा—"समन्वय में काम करने के लिए कितने वेतन पर आपने निराला को रखा था?" आश्चर्य की मुद्रा में स्वामी जी ने कहा—"We treated him as one of us—a brother." आगे स्वामी जी ने कहा—"He used is say, If I were the son of Prince Dwarka Nath Thakur and rich, People would have thought we great." तब संन्यासीगण निराला की बात पर हँसते थे। उन दिनों की याद करके स्वामी जी सरल-मुक्त हँसी हँसने लगे। फिर गम्भीर होकर कहा—"But he has Proved that he was right."

निराला यद्यपि स्वयं अभाव की चक्की में पिसते रहे, पर किंग लियर की तरह उन्होंने न जाने कितने 'एडगरों' के प्रति अपनी अपार सहृदयता दिखाई। अपना एकमात्र वस्त्र तक सर्दियों में उन्हें दे

डाला। यह संस्कार उनके संन्यासी व्यक्तित्व का ही एक अंग था जिसे उन्होंने रामकृष्ण मिशन के महान् संन्यासियों के संसर्ग में प्राप्त किया था।

निराला विश्व-साहित्य में कबीर, तुलसी, शेक्सपियर, अर्नेस्ट हेमिंग्वे आदि की परम्परा की कड़ी हैं। हेमिंग्वे ने तो अंत में आत्महत्या कर ली थी, पर निराला अंत तक संघर्ष करते रहे, अर्धविक्षेप की अवस्था में भी लिखते रहे :

"मुक्ति हूँ मैं
मृत्यु में आई हुई,
— न डरो।"

●

प्रत्येक पुरुग, और प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वररूप में देखो। इतनी अधिक तपस्या के उपरान्त मैने इस यथार्थ सत्य को समझा है—ईश्वर प्रत्येक जीव में है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। "जो जीव की सेवा करता है, वह वस्तुतः ईश्वर की सेवा करता है।" यदि तुम अपने भाइयों – प्रकट ईश्वर की आराधना नहीं कर सकते, तब फिर तुम अव्यक्त ईश्वर की कैसे उपासना कर सकते हो? ईश्वर की पूजा के लिए तुम एक मन्दिर का निर्माण कर सकते हो, और वत अच्छा भी हो सकता है, किन्तु एक उत्तम, एक अत्युच्च मन्दिर पहले से ही स्थित है और वह है –मानव शरीर।

—स्वामी विवेकानन्द

मौन-सम्भाषण

—स्वामी योगात्मानंद

[स्वामी योगात्मानन्द जी रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'जीवन विकास' के प्रबुद्ध सम्पादक हैं। प्रस्तुत लेख 'जीवन-विकास' के सितम्बर, १९९५ अंक में प्रकाशित उनके प्रेरक लेख का अनुवाद है। अनुवादिका हैं—श्रीमती ज्योत्सना किरबई। —सं०]

वह जैसे ही काँच के दरवाजे के निकट पहुँचा, उसके लिए दरवाजा अपने आप खुल गया। जैसे ही उसने दरवाजा पार किया, जैसे ही वह दरवाजा पुनः अपने आप बंद हो गया। आश्चर्यचकित हो उसने मुड़ कर देखा—दरवाजा खोलनेवाला, बंद करने वाला वहाँ कोई भी नहीं था। कौतूहलवश वह पुनः दरवाजे के समीप आया। दरवाजे से एक विशिष्ट दूरी पर जैसे ही उसके कदम पड़े, वैसे ही वह दरवाजा पुनः खुल गया। मानो किसी अदृश्य दरवान ने उसे खोल दिया हो। वह एक कदम पीछे सरका, वैसे ही काँच पटल बंद होने के लिये एक दूसरे के समीप आने लगे। पर, उसी वक्त एक अन्य व्यक्ति उस द्वार से अंदर प्रविष्ट होने हेतु दरवाजों के समीप आया, पहले के समान ही वह दरवाजा खुला और उस व्यक्ति के दरवाजे से अंदर प्रविष्ट होने के साथ ही वह पुनः अपने आप बंद हो गया।

यह पूर्ण घटनाचक्र देखकर उसकी छोटी-सी कुशाग्र बुद्धि में एक तीव्र हलचल-सी मच गयी। अंदर बैठी हुई अपनी माँ के पास वह दौड़कर पहुँचा तथा अत्यत आश्चर्यचकित हो बोला—"माँ, आपने वह जादू देखा? ज्योंही हम उस दरवाजे के निकट पहुँचते हैं वैसे ही उसे अपने आप पता चल जाता है।

"वहाँ है न, एक अदृश्य यक्ष बैठा हुआ है, जब भी कोई उस दरवाजे से अंदर प्रविष्ट होता है तब वह अदृश्य यक्ष दरवाजा खोल देता है।" माँ ने अपने नन्हें से बच्चे के मन में अपनी शंका का समाधान करते हुए कहा।

वह बच्चा जब बड़ा होगा, तब शायद उसे पता चल ही जायेगा कि वह अदृश्य यक्ष याने विद्युत शक्ति का एक चमत्कार है। जब भी कोई व्यक्ति उस द्वार पटल से एक नियोजित दूरी पर पहुँचता है, उस व्यक्ति के आगमन की खबर एक यंत्र को मिलती है, और उसी के साथ वह द्वार पटल अपने आप खुल जाता है। जैसे ही वह व्यक्ति उस द्वार से प्रविष्ट हो अन्दर चला जाता है, यह खबर भी उसी क्षण उस यंत्र तक पहुँचती है और वह दरवाजा तत्क्षण बंद हो जाता है। आजकल बहुत-से बड़े-बड़े वातानुकूलीत होटलों, सभागृहों में इस तरह के जादू के दरवाजे बनवाये जाते हैं। तथापि जिन्हें इन स्वचालित दरवाजों के रचनाशास्त्र का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है, उन लोगों को, चाहे वे लोग उम्र से कितने भी बड़े क्यों न हों, या अन्य किसी विद्या में कितने ही निपुण क्यों न हों, उनको यह बात इतनी अधिक आश्चर्यचकित कर देती है कि उस दरवाजे को पता ही कैसे चलता है कि उसके समक्ष कोई खड़ा है और उसे रास्ता देने के लिये

खुलता है। वहाँ तो कोई किसी को कुछ बताता भी नहीं और कोई देखता भी नहीं। फिर यह जानकारी उस तक पहुँचकर किस तरह कार्य करती है ?

□ □ □

जानकारी या ज्ञान का संक्रमण यह सिर्फ मानव जाति की ही नहीं, अन्य जीवों के लिये भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या रही है। अपने पास की जानकारी दूसरों तक पहुँचाना, या दूसरों के पास की जानकारी स्वत: प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाने वाला सबसे अधिक प्रचलित साधन है 'भाषा'। कंठ से निकलने वाली विभिन्न ध्वनियां को मुद्राओं, हावभावों तथा हस्तविक्षेपों की सहायता से अति साधारण व्यावहारिक जानकारी और वह भी केवल सीमित क्षेत्रों में ही संक्रमित कर सकने वाले आदिम मानवों की भाषा से लेकर उत्कृष्ट तथा उच्च श्रेणी की अति सरल भावानुभूतियों को अभिव्यक्तिकरण के लिये तथा विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न विषयों के दुरुह तथा क्लिष्ट शास्त्रों संबंधी जानकारी, वह भी बिना किसी गलता के, कितने ही बड़े विस्तृत क्षेत्रखण्ड में तथा हजारों वर्षों की कालावधि तक संक्रमित कर सकने वाली अति-प्रगल्भ आधुनिक भाषा तक भाषा की प्रगति हो चुकी है। अनुभव में आने वाली प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति क्रिया तथा भावनाओं के निर्देशीकरण के लिए ध्वनि के विभिन्न प्रकारों को संकेत चिह्न के रूप में प्रयुक्त ध्वनि करना सबसे अधिक उपयुक्त था, और यह स्वाभाविक भी था। क्योंकि ध्वनि के विभिन्न प्रकारों और उनके सम्मिश्रण से वस्तुत: अनगिनत संख्या में संकेत चिह्न तैयार किये जा सकते हैं, और उनका आदान-प्रदान भी अत्यंत सुलभता से तथा अचूकता से किया जा सकता है। इसी प्रकार ध्वनि का वर्गीकरण कर उनमें से प्रत्येक प्रकार की ध्वनि को एक विशिष्ट चित्र संकेत द्वारा चिह्नित कर इन ध्वनि संकेतों को 'लिपिबद्ध' कर सुरक्षित भी रखा जा सकता है। इसके फलस्वरूप ज्ञान या जानकारी का आदान-प्रदान सुदूर क्षेत्रों तक तथा अनंत काल तक किया जा सकता है। पर इसके लिये भाषा का सटीक ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। जो व्यक्ति जानकारी प्राप्त करना चाहता है उसे जानकारी देने वाले व्यक्ति की भाषा का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि किसी बंगभाषी व्यक्ति को तमिल भाषी अपनी भाषा में कुछ समझाना चाहें तो यह व्यर्थ ही होगा। इसके लिये बंगभाषी व्यक्ति को तमिल की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। तभी लान का आदान-प्रदान हो सकेगा। यदि भाषा लिखित स्वरूप में हो तो प्रथमत: कौन-सा अक्षर या चित्र किस ध्वनि को चिह्नित करना है इसका ज्ञान होना नितांत आवश्यक है। दूसरे शब्दों में उसे लिपिज्ञान होना चाहिये साथ ही पढ़ना भी आना चाहिये। तदुपरांत कौन-सा ध्वनिसमूह किस जानकारी को निर्देशित करता है इसकी जानकारी भी श्रोता को होनी चाहिए। श्रोता तथा वक्ता इन दोनों को ही एक दूसरे की भाषा का जितना सही-सही ज्ञान होगा उतना ही जानकारियों का आदान-प्रदान सही ढंग से किया जा सकता है।

यद्यपि भाषा की सहायता से भावों का संप्रेषण तथा ज्ञान का संप्रेषण हो सकता है, तथापि इसमें अनेक बाधाएँ भी हैं। मन, बुद्धि तथा वाक्शक्ति इन तीनों के बीच यदि पूर्णत: सामंजस्य हो, तभी ज्ञान का आदान-प्रदान, मूल जानकारी में बिना किसी विकृति के या बिना कोई क्षति पहुँचे हो सकता है। पर बुद्धि-मन-इंद्रिय के बीच पूर्णत: एकात्मकता बहुत कम ही दिखाई देती है। जानकारी देने वाले व्यक्ति को प्रथमत: अपने मन के शब्दसंग्रह में से उचित शब्दों का चुनाव कर, उस जानकारी को विचार-रूप में परिणत करना पड़ता है। फिर उन विचारों को उचित ढंग से क्रमबद्ध कर कंठ में स्थित ध्वनियंत्र की सहायता से स्थूल ध्वनि या

स्थूल वाणी के रूप में उच्चारित करना पड़ता है। इसके ठीक विपरीत ग्रहण करने वाले को स्थूलवाणी विचार-जानकारी इस क्रम से जानकारी को ग्रहण करना होता है। (यदि भाषा लिपिबद्ध हो तो जानकारी देने वाले या ग्रहण करने वाले दोनों को एक और अधिक सीढ़ी तय करनी होती है।) इस तरह जानकारी प्राप्त करने के लिये तय की गयी प्रत्येक सीढ़ी पर दोष प्रविष्ट होने की पूर्ण संभावना रहती है। किस-किस सीढ़ी पर कौन-कौन से दोष प्रविष्ट हो सकते हैं इससे सबंधित चर्चा भले ही उद्बोधक तथा मनोरंजक हो, पर विस्तार के भय से यहाँ यह चर्चा करना उचित नहीं। फिर भी कहा जा सकता है कि ऐसे दोष भाषा में प्रविष्ट होकर उसे दोषपूर्ण बन जाते हैं। और 'बताना कुछ और ही था पर कुछ और ही बता दिया' 'बोलना कुछ और ही चाहता था पर उसने और ही कुछ समझ लिया' इस प्रकार की स्थितियाँ अनेक बार पैदा होती हैं। और हममें से प्रत्येक को कभी-न-कभी इस प्रकार के अनुभवों से होकर गुजरना ही पड़ता है।

ज्ञान के संप्रेषण में आने वाली एक ओर बाधा एक शब्द का अनेकार्थी होना है। एक ही शब्द या ध्वनि अनेक अर्थों का द्योतक होती है। अतः किस संदर्भ में, किस परिस्थिति में और कौन शब्द उच्चरित कर रहा है इस बात को ध्यान में रखकर शब्दों द्वारा चिह्नित जानकारी को समझना आवश्यक है। वैसे देखा जाय तो प्रत्येक व्यक्ति का मन अलग-अलग संदर्भों में विचरण करता रहता है। और इसीलिये बहुत सारी गलतियाँ कभी हास्यास्पद तो कभी गंभीर, घटित होती रहती हैं।

बंबई के किसी बस में एक कंडक्टर सवारियों को टिकिट दे रहा था। पहले व्यक्ति ने परिचालक से कहा 'हाजी अली' और टिकिट ले लिया। उस व्यक्ति के पीछे खड़ी महिला ने परिचालक से कहा 'महालक्ष्मी' और परिचालक ने उसे भी टिकट दे दिया। टिकिट निकालने की प्रक्रिया को देखते हुए पीछे खड़े तीसरे व्यक्ति ने नोट सामने कर परिचालक से कहा—'कल्याण सिंह'। यह संशयात्मक स्थिति सिर्फ इसीलिए उत्पन्न हुई, क्योंकि पहले दोनों नाम व्यक्तिवाचक तथा स्थानवाचक दोनों ही थे। उन दोनों व्यक्तियों ने 'हमको कहाँ तक जाना है' यह सूचित करने के लिए इन दोनों नामवाचक सज्ञाओं (हाजी अली तथा महालक्ष्मी) का उपयोग किया था और परिचालक को भी उचित संदर्भ का ज्ञान था। अतः उसे इन दोनों संकेत चिह्नों के द्वारा योग्य जानकारी सही ढंग से मिल गयी। पर तीसरे व्यक्ति को योग्य संदर्भ की जानकारी न होने के कारण उसे लगा कि टिकिट लेने वक्त परिचालक को अपना नाम बताना पड़ता है।

×

श्री रामकृष्ण देव का जीवन सदैव भगवत भावमय था। और इसी कारण किसी भी शब्द का अर्थ उन्हें ईश्वर भावमय प्रतीत होता तथा वे तुरंत ही भावसमाधि की स्थिति में पहुँच जाते। जो शब्द साधारण मानवों के हृदय में वीभत्स भाव संचारित कर सकते थे, उन्हीं शब्दों को सुनते साथ दूसरी ही जानकारी उनके अंदर संक्रमित हो जाती थी और वे भगवद्भावविभोर हो जाते थे। ध्वनि एक ही पर संदर्भ अलग-अलग, और इसीलिये ग्रहण किया जाने वाला अर्थ भी अलग।

एक सुप्रसिद्ध सत्य घटना है। एक धोबी था। रोज सायंकाल को वह भट्टी जलाकर उसमें मैले कपड़े धोने के लिए डाला करता था। एक शाम को उसकी पुत्री ने उसे बुलाकर कहा (बंगला में)—"बाबा, संध्या होयछे, बासने आगुन दाओ" अर्थात पिता जी शाम हो गयी है अतः रोज के समान भट्टी जलाकर कपड़ों को आग में डालो। बासन='बसन

शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है 'कपड़ा'। अर्थात् कपड़ों को भट्टी में डाल दो।' ये शब्द उसी ओर से निकलने वाले लाला बाबू नामक जमींदार के कानों में पड़े। उनके मन में भगवद्भक्ति के लिए संसार-त्याग का विचार पहले से ही जोर पकड़ रहा था। इसी कारण वैराग्य की तरफ झुकने वाले उनके मन में इन शब्दों का अलग ही अर्थ प्रकट हुआ "जीवन की संध्या हो चुकी है, अब तो वासनाओं को अग्नि में समर्पित कर ही देना होगा।" यह अर्थ तीव्रता से उनके मन को उद्वेलित कर गया और उसी क्षण उन्होंने सांसारिक माया-मोह के बंधनों को त्यागकर वृंदावन की ओर प्रस्थान किया और कालांतर में एक महान संत के रूप में उन्होंने ख्याति प्राप्त की।

विभिन्न विषयों की स्वत: की एक भाषा होती है। यदि किसी विषय का आपको थोड़ा बहुत ज्ञान है, और इस विषय का आप अध्ययन करते हैं तभी आप उस विषय से सम्बन्धित उच्च श्रेणी के ग्रथों को समझ सकते हैं। यदि आपको सिर्फ उसकी भाषा (मराठी, अंग्रेजी) का ज्ञान है, फिर भी उस विषय को पूर्णत: समझा नहीं जा सकता। क्योंकि प्रत्येक विषय की, सर्वसामान्य भाषा पर आधारित होने पर भी उससे अलग मौलिकता लिए हुए, एक स्वतंत्र भाषा रहती है।

आध्यात्मिक, ग्रन्थों के बारे में भी यही बात सत्य है। उनकी भी एक मौलिक स्व-भाषा होती है। उस भाषा का ज्ञान हुए बिना हम उन ग्रंथों के तथ्यों का आकलन भी नहीं कर सकते। वैसे ऊपरी तौर पर देखा जाय तो उपनिषद भागवत्, आदि-पुराण तथा मनुस्मृति आदिग्रन्थ संस्कृत भाषा में रचे गए हैं। ऐसा मान भी लिया जाय तो भी सच्चाई तो यह है कि इन ग्रन्थों की एक अपनी स्व-भाषा है तथा संस्कृत भाषा का साधन के रूप में उपयोग किया है। सभी शब्दों से परे होकर भी सभी शब्दों को आधार देने वाले सर्वातीत पर फिर भी सर्वस्पर्शी ऐसे एकमेवाद्वितीय तत्व, जो ऋषियों ने अनुभव किये थे, उन अनुभवों तथा ज्ञान को दूसरों तक संक्रमित करना ही इन ग्रन्थों का उद्देश्य है। और इसीलिए कहा जाता है कि ये ग्रन्थ समाधि भाषा में रचे गए हैं। यदि इस मौलिक भाषा का ज्ञान आपको नहीं है तो इन ग्रन्थों को समझना सिर्फ कठिन ही नहीं असंभव भी है। बल्कि कभी-कभी तो ग्रन्थ के अर्थ को समझने के स्थान पर इसके बिल्कुल ही उलटे अर्थ मानव मन में प्रविष्ट होकर विकट परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

जिन व्यक्तियों को दूसरों के मन को समझने की, उनमें प्रविष्ट होने की शक्ति प्राप्त है वे लोग बिना किसी भाषा की सहायता से उस व्यक्ति से या उस व्यक्ति को ज्ञान का आदान-प्रदान बड़ी ही सहजता तथा अचूकता से कर लेते हैं। इस प्रकार के संक्रमण में किसी भी प्रकार की उत्पन्न नहीं होती। एक-दूसरे के समीप रखे हुए तथा एक-सुर में सजे हुए एकतारे में जिस तरह एक के झंकृत होने से अपने आप सभी तार झंकृत होने लगते हैं उसी प्रकार एक-दूसरे को समझनेवाले, एकरूप होने वाले मानव-मन भी होते हैं। यदि एक मन में किसी तरह की अनुभूति प्रकट होती है तो वही अनुभूति अन्य एकरूप हो गये मानव मनों में भी अपने आप सह-कम्पन उत्पन्न कर देती है। अपने बच्चे की वेदना समझने के लिए माँ को किसी भाषा की आवश्यकता नहीं होती। उसे तो बच्चे की वेदना का आभास तुरंत ही हो जाता है। और यह दूसरों के लिए संभव तो नहीं।

योगशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो किसी भी व्यक्ति के मन में यहाँ तक कि जानवरों के मन में किस तरह प्रवेश किया जा सकता है इससे संबंधित जानकारी उपलब्ध कराता है। योगशास्त्र के अनुसार वस्तुत: मेरा मन, उसका मन, तेरा मन आदि अलग-अलग मन न होकर एक ही मन के

कल्पित टुकड़े हैं। एक विशिष्ट अंश को हमने अपना मन मान लिया और उसी के कारण उस अंश से हम बद्ध हो गये। और इसीलिए मन के दूसरे अंश हमसे मानो दूर हो गये हैं। और इसीलिए जानकारी-प्रदान हेतु हमें स्थूल भाषा के समान माध्यम का उपयोग करना पड़ता है जो मूल जानकारी में दोष उत्पन्न करने सक्षम है और साथ ही अत्यंत क्लिष्ट तथा दुरूह भी।

पाकिस्तान-भारत युद्ध के समय जब भारत पाकिस्तान सीमा बंद थी तथा परस्पर आवागमन निषिद्ध था तब सीमा से लगे भारतीय गाँवों से पाकिस्तानी सीमा के निकट के पाक गाँवों में जाने के लिए पहले किसी तीसरे देश में प्रवेश करना पड़ता था और तभी पाकिस्तानी सीमा में प्रविष्ट हुआ जा सकता था याने उल्टे हाथ कान पकड़ने वाली कसरत करनी पड़ती थी। जिस तरह भूमि का भारत-पाकिस्तान-इंगलैंड आदि विभाजन कल्पित हैं, मूल रूप से भूमि एक ही है उसी प्रकार मन एक ही है पर अपना-पराया, तेरा-मेरा इस तरह की कल्पना करने के कारण जानकारियों का आदान-प्रदान कठिन हो गया है।

'जिसने भी इस विश्वमन से एकात्मकता स्थापित कर ली है, उसे किसी भी अंश की जानकारी दूसरे अंश को देना सहजता से साध्य है। उसके लिए स्थूल भाषा का माध्यम अनिवार्य नहीं।

जगतजननी माताजी श्री सारदादेवी एक बार बंगलौर गयी थीं। साक्षात् सर्वशक्तिस्वरूपिणी माँ एक ग्रामीण अशिक्षित स्त्री के रूप में प्रकट हुई थीं। एक दिन आश्रम के पिछवाड़े स्थित मन्दिर में स्वामी विशुद्धानन्द के साथ भगवत् दर्शन हेतु गयीं। आश्रम में वापस आकर उन्होंने देखा कि आश्रम का प्रांगण उनके दर्शन हेतु आये भक्तों से भरा हुआ है। माताजी की गाड़ी जैसे ही अन्दर प्रविष्ट हुई, सभी भक्तों ने साष्टांग दण्डवत किया। यह देखकर माँ हृदय प्रेम से गद्गद हो उठा। गाड़ी से उतरकर माँ वराभयदायी मुद्रा में स्थिर खड़ी हो गयीं। पूर्ण वातावरण एक अवर्णनीश, घनीभूत शांतिभाव से तथा गांभीर्य से परिपूर्ण हो गया था। श्री माँ शांति से पदक्षेप करती हुई मध्य में स्थित दालान में आकर बैठ गयीं। सभी भक्त चारों ओर घेरा डालकर बैठ गये। दोनों ओर से एक भी शब्द का उच्चारण नहीं हो रहा था पर श्री माँ के हृदय से निकले मौन स्फूर्त आशिर्वचन भक्तों के हृदयों तक पहुँचकर उनमें चैतन्यता जागृत कर रहे थे। एक इन्द्रियातील अनिवर्चनीय आनन्दभाव सभी के हृदय में व्याप्त हो चुके थे। किसी भी भाषा को माध्यम बनाये बिना श्री मां का संदेश अपने भक्तों के हृदयों तक पहुँच रहा था। कोई भी प्रश्न नहीं पूछ रहा था पर भक्तों के मनों में उत्पन्न संदेहों का निराकरण अपने आप ही हो रहा था। इस तरह व्याप्त घनीभूत शांति को भंग करते हुए श्रीमां ने स्वामी विशुद्धानंद से कहा—"कितने दुःख की बात है कि मुझे इनकी भाषा का ज्ञान नहीं। नहीं तो इन लोगों से मैं थोड़ी बातचीत कर सकती। इससे इन लोगों को भी कितनी प्रसन्नता होती।" स्वामी विशुद्धानन्द ने माताजी की इस बात का अनुवाद कर उपस्थित भक्तों को सुनाया। तब सभी भक्त-जन एक स्वर में बोल उठे—'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। सब कुछ व्यवस्थित ढंग से चल रहा है। हमलोगों का हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द से भर आया है। ऐसे प्रसंगों में शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं होती।"

'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः'

गुरु का मौन व्याख्यान चल रहा है और शिष्यों के संशय नष्ट हो रहे हैं।

श्री शंकराचार्य की इस उक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण श्री माताजी के जीवन में अनेक बार देखने को मिलता है। श्री मां ने दक्षिण भारत में अनेक लोगों को मंत्रदीक्षा देकर कृतार्थ किया था। इस अवसर

पर बिना किसी दुभाषिया की सहायता से आवश्यक उपदेश वे उन शिष्यों को दिया करती थीं। शिष्यों को भाषा की अड़चन कभी भी महसूस नहीं होती थी। उनके मनों में उत्पन्न संदेहों का तत्क्षण ही निराकरण हो जाया करता था।

उस वक्त मद्रास के रामकृष्ण मठ के प्रमुख श्री रामकृष्णदेव के एक प्रमुख शिष्य स्वामी रामकृष्णानन्द थे। मद्रास के लोगों ने उनसे पूछा कि क्या श्री मां मद्रास के अपने प्रवास के दौरान व्याख्यान देंगी? रामकृष्णानन्द का नकारात्मक उत्तर सुनते ही बहुत से लोग निराश होकर माताजी का दर्शन किये बिना ही वापस चले गये। कितने अभागे थे वे लोग, दुर्भाग्यशाली। उनकी नजरों में तो महानता का पैमाना भाषण देने की कुशलता पर निर्भर करता था। यदि वे लोग कुछ क्षणों के लिए भी श्री मां के सान्निध्य में रह पाते तो लाखों व्याख्यानों को सुनकर भी जितना ज्ञान उन्हें नहीं मिल पाता उतना ज्ञान बिना किसी प्रयास के उनमें प्रविष्ट हो जाता।

अपने संकुचित आंशिक मन के बंधनों को तोड़कर जो विश्वमन से एकरूप हो गये हैं वे लोग बिना किसी बाह्य माध्यम की सहायता से, कोई भी जानकारी या ज्ञान किसी भी व्यक्ति में, प्राणि में, यहां तक कि स्थूल दृष्टि से जो चीजें जड़ावस्था में दिखाई देती हैं ऐसे पत्थरों तक में अबाधित रूप से संक्रमित कर सकते हैं। सन्तों के जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। जिन्हें इनके रहस्य का ज्ञान नहीं हो पाता वैसे लोगों को यह सब 'चमत्कार' लगता है। कुछ तो इसे ढोंग या छलकपट मानते हैं। योगिराज ज्ञानेश्वर महाराज ने भैंसे के मुँह से वेदपाठ करवाया था और एक पत्थर निर्मित दीवार भी उनके एक ईशारे से चलने लगी थी। पर इन बातों पर विश्वास करना आम व्यक्ति को असम्भव-सा लगता है। पर ये सारे 'चमत्कार' सत्य हैं। और आज भी ऐसे कई चमत्कार घटित होते रहते हैं। पर यह बात सिर्फ वही व्यक्ति समझ सकता है जो जानकारी के इस प्रकार के संक्रमण का रहस्य जानता हो। और मुक्तभाव से इन रहस्यों को जानने की चेष्टा करता है। बाकी लोगों के लिए तो यह सब बातें बुद्धि से परे हैं।

लेख के शुरूआत में वर्णित घटना में, वह दरवाजा आपने आप कैसे खुलता है तथा बन्द होता है? उसे 'जानकारी' कैसे मिलती है यह कितने लोगों को समझ में आयेगा?

अनुवादिका
सौ० ज्योत्स्ना किरबई
४०, अंबाझरी ले आउट, नागपुर-१०

स्वामी विवेकानन्द की 'कश्मीर अमरनाथ' यात्रा

—मोहन सिंह मनराल, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

प्रकृति की अनुपम भेंट भूस्वर्ग कश्मीर की धरती पर ब्रह्मऋषि विवेकानन्द के चरण १८९७ व १८९७ में दो बार पड़े जब वे अपने पश्चिमी देशों में वेदान्त विजय के उपरान्त भारत लौटे थे। पूरे भारत को गहन नींद से जगा देने के अभियान में उन्होंने प्रथम बार सितम्बर १८९७ में कश्मीर में प्रवेश किया था। १३ सितम्बर १८९७ को उन्होंने उन्होंने अपने गुरुभाई ब्रह्मानन्द को पत्र में लिखा, 'अभिन्न-हृदय,अब मैं कश्मीर आ पहुँचा हूँ। इस देश के बारे में जो प्रशंसा सुनी जाती है, वह सत्य है। ऐसा सुन्दर देश और नहीं है....'! १५ सितम्बर को वे एक अन्य पत्र में स्वामी शुद्धानन्द को लिखते हैं, "मैं समझता हूँ कि यही एकमात्र देश है जो कि योगियों के लिए अनुकूल है।" यहीं से श्रीमती इन्दुमती को एक अन्य पत्र में वे लिखते हैं—"कश्मीर वास्तव में ही भू स्वर्ग है। ऐसा देश पृथ्वी में दूसरा नहीं है। यहाँ पर जैसे सुन्दर पहाड़ वैसा ही नदियाँ, वैसी ही वृक्ष लतायें, वैसी ही स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि सभी सुन्दर हैं। अब तक न देखने के कारण चित्त दुःखी होता है।"

इस एक माह के प्रवास में स्वामी जी ने जल के ऊपर 'हाउस बोट' में निवास किया और स्वास्थ लाभ के साथ-साथ प्राकृतिक दृश्यों का भरपूर अवलोकन किया। वे प्रायः एकान्त में दूर-दूर तक अपनी नौका में सवार इस नजारे में खो गये मानो सारी थकान चुक गयी हो। प्रकृति ने उन्हें अपनी मृदुल बाहों में उठा लेने के लिये ही आमंत्रित किया था। उनके साथ इस प्रवास में थे सदानन्द, कृष्णलाल, लाटू, निरंजन, दीनू और खोका। इस यात्रा में उन्होंने कश्मीर के राजा, उनके भाई व सेनापति श्री राम सिंह से भेंट की और उन्हें प्रभावित किया। उनका विचार प्रकृति की इस अनुपम भेंट भू स्वर्ग में एक आश्रम स्थापित करने की थी जिसे राजा ने स्वीकार किया। स्वामी जी इस प्रवास में मुख्य न्यायाधीश श्री ऋषिवर मुखोपाध्याय के अतिथि हुए थे। राजा राम सिंह ने ही उनके लिये हाउस बोट की व्यवस्था कर दी थी। २० सितम्बर को वे पामपुर गये जहाँ उन्होंने केसर के खेत देखे। २२ को अनन्तनाग और २४ को वे अक्षयबल से रवाना हुए जहाँ उन्होंने अति प्राचीन पाण्डवों के मन्दिर का दर्शन किया। अक्षयबल से वे श्री नगर लोट आये। अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में उन्होंने वारामूला में पड़ाव डाला और ताँगे से ८ अक्तूबर को मरी पहूँचे। यहीं से वे अपने विभिन्न पत्रों में अपने भीतर उठने वाले भावों का बखान पत्रों में करते रहे। एक पत्र में उन्होंने लिखा 'प्रेम में मतवालापन और फिर भी बंधन का अभाव। प्रेम शक्ति से जकड़ा भी चैतन्य में रूपान्तरण यही तो हमारे वेदान्त का सार है।' एक अन्य पत्र में वे लिखते हैं, इस समय हमारे देश में पुरुषार्थ और दया की आवश्यकता है।' हिमालय उनके आगे ऐसे ही भावों को लाकर खड़ा कर रहा था और वे लिख पाये थे, 'हे वीर, स्वप्न को त्याग कर जाग्रत हो, मृत्यु सिर पर खड़ी है, वह तुम्हें भयभीत न करे।' इसी के साथ वे रावलपिण्डी व लाहौर में वेदान्त प्रचार में संलग्न हो गये।

एक वर्ष बाद जून १८९८ में स्वामी जी ने अपनी पाश्चात्य देशों से आई शिष्य मण्डली के साथ उत्तराखण्ड हिमालय के बाद कश्मीर हिमालय में भ्रमण करने की योजना बनाई। उनकी यह यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है जिसमें उन्होंने बाबा अमरनाथ, माँ गौरा के दर्शन किये और इच्छामृत्यु का वरदान लेकर वे कालजयी हुए। इस यात्रा का महत्त्व इसलिये भी है कि पहली बार उन्हें देवी माँ की देववाणी सुनाई पड़ी और उन्होंने स्वयं को समग्र रूप से जग जननी के आगे समर्पित कर दिया। धन्य है पर्वतराज हिमालय की यह देव भूमि जहाँ एक साथ इतनी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई जिनपर हमें गर्व होता है।

कश्मीर-अमरनाथ की इस यात्रा में स्वामी जी के साथ उनकी पाश्चात्य देशों से आई शिष्याय थी जिनमें कीमती पैटर्सन, ओलीबुल (धीरा माता) तथा कुमारी मैक्लाउड (जया) ये तीनों अमेरिकन्स और भगिनी निवेदिता अंग्रेज थी। यह टोली १५ जून को मरी पहुँची जहाँ तीन दिन विश्राम के उपरान्त १८ जून को इस बार उन्होंने कश्मीर की यात्रा प्रारम्भ की थी। उसी दिन डुलाई पहुंच उन्होंने डाक बंगले में विश्राम किया और दूसरे दिन तांगे से बारामूला की ओर चल पड़े।

भूस्वर्ग कश्मीर में :—

बारामूला के पथ पर स्वामी जी हिमालय की स्फूर्तिदायी वायु और मनोरम दृश्यावलियों के मध्य गहन हृदय प्रदेश में डूबते चले गये : उनका यह भावान्तरण शिव के प्रति उनकी स्मृतियों को उजागर करने में दिखाई पड़ा और वे लगातार शिव के बारे में अपनी शिष्याओं से बोलते गये। उन्होंने अपनी माता द्वारा उनके नटखटपन को शान्त करने हेतु शिव-शिव कहकर उनके ऊपर जल छिड़कने से लेकर अन्य बातों का उल्लेख किया। बारामूला से २० जून को वे कश्मीर घाटी की ओर चल पड़े। उनके साथ किसी पुरुष संगी के न होने के कारण नाव ढूँढ़ने भी उन्हें जाना पड़ा जहाँ एक व्यक्ति ने स्वप्रेरणा से यह भार अपने जिम्मे ले लिया। इस पर शिष्याओं के सम्मुख टिप्पणी करते हुए वे बोले, 'भाग्यवान का बोझ भगवान ही वहन करते हैं।' तीन नावों में उन्होंने श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। अगले दिन वे कश्मीर घाटी पहुँचे और प्रातः भ्रमण के समय स्वामी जी प्रथम यात्रा में परिचित एक मुसलमान वृद्धा के परिवार के फार्म में पहुँचे जिसने पूर्व यात्रा में जल पीने के बाद स्वामी जी के पूछने पर, "माँ तुम कौन से धर्म की अनुयायी हो ?" कहा था, "खुदा, को शुक्र है कि मैं मुसलमान हूँ।" स्वामीजी उस वृद्धा के आत्मगौरव व स्वाभिमान की सदा प्रशंसा करते थे और इसी कारण वे पुनः भेंट कर आये। उस परिवार ने उनका व उनकी पाश्चात्य शिष्याओं का स्वागत किया और सौजन्य व्यक्त किया।

२२ जून को श्रीनगर पहुँचने के बाद शिष्याओं ने स्वामी जी को एकान्त प्रिय और गहन मौन धारण किये पाया। वे पृथक बजरे में रहने लगे थे। श्रीनगर के ऐतिहासिक व धार्मिक स्थानों, मन्दिरों आदि के भ्रमण व स्थानीय लोगों से चर्चा के उपरान्त वे और अधिक गम्भीर, एकान्तप्रिय और ध्याननिरत हो गये। लगभग पूरा जून ऐसे ही बीता और अब आया जुलाई और उसकी चौथी तारीख जो अनेक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

'चौथी जुलाई के प्रति'

चौथी जुलाई संयुक्त राज्य अमेरिका का स्वाधीनता दिवस था। स्वामी जी ने इसी देश के मंच को अपने वेदान्त प्रचार के लिये प्रयोग किया था। उन्होंने अमेरिका को मानव की स्वतंत्रता के पक्षधर के रूप में लिया था। विद्वता व समृद्धि के वाहक, विज्ञान व तकनीक के प्रावोभक के रूप में मान्यता प्रदान की थी। इस अवसर पर उन्होंने अपने दल की तीन अमेरिकन शिष्याओं को निवेदिता की सहायता से एक काश्मीरी पंडित दर्जी द्वारा तैयार किया गया राष्ट्र ध्वज भेंट किया। नाव के ऊपर प्रातः काल के जलपान के वक्त सजावट के साथ मात्र यह ध्वज ही नहीं अपितु एक सुन्दर कविता की रचना करके उन्हें आश्चर्य चकित कर दिया। स्वामी जी ने उसका पाठ कर 'मुक्ति' के इस संदेश को एक भविष्यवाणी के रूप में प्रकट कर सभी को हतप्रभ कर डाला। चौथी जुलाई जहाँ एक ओर स्वाधीनता के विचारों के वाहक अमेरिका का स्वाधीनता दिवस था वहीं दूसरी ओर चार वर्ष बाद स्वयं स्वामी जी की महासमाधि का दिवस भी सिद्ध हुआ। वह एक ऐसा दिवद था जो मानव मुक्ति के इस दिव्य पथिक के महान संघर्ष को एक पल के लिये थाम लेता है। मगर यहीं से एक नई मुक्ति यात्रा का महाउदय होता है जो अबाध रूप से गतिमान है। इन्हीं भावों को प्रकट करती कविता की अन्तिम कहती हैं—

"देव चलते ही चलो बेरोक टोक,
विश्व को दुपहर न जब तक घेर ले,
कर तुम्हारा हर जमी जब तक न दे
स्त्री-पुरुष जब तक न देखें चाव से—
बेड़ियाँ उनकी कटी,
उल्लास की जो नई जब तक न समझें आ गयी।"

ठीक इसी भाव को अपने संदर्भ में उन्होंने एक पत्र में इन शब्दों में व्यक्त किया था—"मैं मृत्युपर्यन्त निरन्तर काम करता रहूँगा और मृत्यु के बाद भी संसार की भलाई के लिये तब-तक कार्य करता रहूँगा जब तक की वह यह न जान ले कि वह ईश्वर से अभिन्न है।" यही चौथी जुलाई महासमाधि का दिन बनकर आया संयोग या भविष्यवाणी थी यह कौन कह सकता है।

श्रीनगर से डल झील की ओर जाने के मार्ग में यह उत्सव सम्पन्न हुआ। डलौझील पहुँचकर उन्होंने निशात बाग और शालीमार बाग देखे। इसके उपरान्त २२ जुलाई तक स्वामी जी ने काश्मीर के अनेक स्थानों का भ्रमण किया मगर इस दौरान्त शिष्याओं ने उन्हें तीव्र वैराग्य में डूबा पाया। उनकी बातों में बार बार वही स्वर सुनाई पड़ने लगा। उन्हें यह कहते सुना गया—पृथ्वी की सारी वस्तुएं भययुक्त हैं, मनुष्म के लिये एकमात्र वैराग्य ही अभयकारी है। वैराग्य की इसी तीव्र आकुलता से युक्त स्वामी जी बिना अपनी शिष्याओं को कुछ बताये १० जुलाई को अमरनाथ दर्शन को चल पड़े। १५ जुलाई को वापस लौटकर स्वामी जी ने बताया कि अधिक ग्रीष्म के कारण सोनमार्ग में अनेक हिमनदों के धँस जाने से मार्ग दुर्गम हो गया है अतः उन्हें वापस लौट आना पड़ा। मगर उनका तीर्थ दर्शन का संकल्प

बरकरार था औप उन्होंने इस्लामाबाद और अनन्तनाग के लिये प्रस्थान किया जो उनकी प्रसिद्ध अमरनाथ यात्रा के रूप में परिणित हुआ। २२ जुलाई को वे बीजबिहार मंदिर पहुँचे और २३ जुलाई को उन्होंने मार्तण्ड मन्दिर देखा। इस्लामाबाद में ही उन्होंने अपनी मानसपुत्री निवेदिता को अमरनाथ गुहा की यात्राकरने का अमंत्रण दिया जिसे उसने तहेदिल से स्वीका4 किया। निश्चित किया गया कि बाँकी सभी जन पहलगाम तक जायेंगे और वापस लौटने तक स्वामी जी की प्रतीक्षा करेंगे। आवश्यक तम्बू आदि खरीदकर २६ जुलाई १८९८ को स्वामीजी ने अपनी मानसपुत्री के साथ यह दैवीय प्रेरणा से प्रेरित ऐतिहासिक यात्रा प्रारम्भ की जिसने उन्हें मृत्युन्जय बना दिया।

'बाबा अमरनाथ दर्शन और इच्छामृत्यु का वरदान'

अमरनाथ की गुहा काश्मीर में स्थित हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिये पवित्र स्थान है। इस तीर्थ दर्शन के लिये लाखों तीर्थ यात्री हर साल जाते हैं। यह गुफा समुद्र तल से १२७२१ फुट की उँचाई पर स्थित ३० फुट चौड़ी, ६० फुट लम्बी और १५ फुट ऊँची है। जिप्सम पत्थर से बनी इस विशाल गुफा में एक साथ २५० भक्त दर्शन कर सकते हैं। इसकी छत से टपकती एक एक बूंद जमकर विशाल हिम के शिवलिंग का निर्माण करती है। चन्द्रकलाओं के आकार से यह लिंग घटता-बढ़ता रहता है। सर्वप्रथम चरवाहों के दल ने इसे खोज निकाला था जिन्होंने इस शिवलिंग को साक्षात शिव समझकर इसकी जानकारी दी थी। इसी ऐतिहासिक गुफा में शिव प्रेरणा से प्रेरित बाबा अमरनाथ के दर्शनाथ वीरेश्वर शिव के अंश शिवावतार स्वामी विवेकानन्द चल पड़े थे।

२८ जुलाई, वृहस्पतिवार, स्वामी अपनी टोली के साथ पहलगाम पहुँचे जो मेषपालकों का ग्राम है और जहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम हैं। स्वामी जी के अलावा लगभग तीन हजार साधु व श्रद्धालु इस महत्वपूर्ण यात्रा में संग-संग चल रहे थे। यात्रा के प्रारम्भ में ही एक विवाद विदेशी होने के कारण निवेदिता के तम्बू को लेकर साधुओं ने खड़ा कर दिया। वे चाहते थे कि निवेदिता का तम्बू स्वामीजी के तम्बू के निकट नहीं हो सकता। स्वामी जी ने इस तर्क का प्रतिवाद किया क्योंकि उनके अनुसार यह तर्क सम्मत न था निवेदिता के अलावा यात्रा के प्रबन्ध करने वाले अधिकांश कर्मचारी अहिन्दू थे। विवाद को तीव्र होते देख एक नागा साधु ने स्वामी जी के पास आकर कहा "स्वामी जी यह सत्य है कि आपमें शक्ति है, पर उसे इस प्रकार प्रकट करना अच्छा नहीं है।" इस पर स्वामी जी चुप हो गये और उन्होंने साधुओं का मत स्वीकार कर अगले दिन तम्बू अन्यत्र खिसकाने में सहमति दे दी। स्वामी जी ने निवेदिता को आदेश दिया कि वह छावनी में चारों ओर घूम आये और साधुओं को भिक्षादान करे। निवेदिता को साधु सेवा का अवसर मिला और साधुओं में उनके प्रति आत्मीयता स्थापित हो गई।

तम्बुओं के बारे में नई व्यवस्था हो जाने पर देखा गया कि अगले दिन स्वामी जी की टोली के तम्बुओं को उठाकर छावनी के मुख्य भाग में एक मनोहर पहाड़ी के ऊपर स्थापित कर दिया गया। साधु स्वयं यह कार्य करने अग्रसर हुए वे निवेदिता की सहायता कर आत्मीयता प्रकट करने लगे इस प्रकार इस विवाद का मधुर समाधान हो गया। इसके बाद हजारों साधु निरन्तर अमरनाथ बाबा की जयकार करते स्वामी जी का संगलाभ करते चल पड़े।

सायंकाल स्वामी जी को घेरे अनेक साधु उनसे सतसंग, शास्त्रचर्चा को प्रस्तुत होते और ज्वलित अग्नि के चारो ओर बैठे यह दृश्य अनुपम होता। मानो उस स्थान पर सब कुछ ब्रह्ममय हो ा हो। श्रोता व व्याख्याता एक ब्रह्म में लीन हो ऐसा दृश्य उपस्थित कर देते जिसपर देवता स्वर्ग से प वर्षा करते। सचमुच ऐसे ही दृश्यों को उपस्थित करती यह यात्रा २० जुलाई को चन्दनवाड़ी पहुँची। से आगे का रास्ता दुर्गम था और हिमनदों को पार करना निवेदिता के लिये पहला अनुभव था। इसके द १२०० फीट ऊँचे बाबजान नामक स्थान में उनकी छावनी लगी जहाँ एक बड़ा अलाव जलाया गया।

इसके बाद पाँच सरिताओं के संगम स्थल पंचतरणी को जाने का मार्ग और भी संकरा था। ली अगस्त को वहाँ पहुँचकर छावनी स्थापित हुई और पांच लघु सरिताओं के ठण्डे जल में परम्परानुसार गे कपड़ों से स्वामी जी ने अन्य लोगों की नजरें बचाकर स्नान किया। ऐसा कहा जाता है इस स्थान शिवजी ने अपनी जटाओं को निचोड़ा था और देवतागण उनकी इस दया से प्रसन्न होकर इस जल- रा में स्नान कर कृतकृत्य हो गये थे। खराब स्वास्थ्य के बावजूद स्वामी जी ने इस परम्परा का र्वाह किया। असह्य ठण्डक से उनके बाँये आंख में खून जम जाने से एक दाग बन गया जो हमेशा वैसा बना रहा।

दो अगस्त अमरनाथ के महोत्सव का दिन था। इस दिन श्रावणी पूर्णिमा थी और हिन्दुओं का सिद्ध रक्षाबंधन का त्यौहार। रात्रि के दो बजे ही यात्रियों की प्रथम टोली ने कड़कड़ाती ठण्ड में छावनी प्रस्थान किया। थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने भी धवल चाँदनी के शीतल प्रकाश में देवाधि देव महादेव दर्शनार्थ प्रस्थान किया। थकान, भूख व शीत से बेहाल यात्रियों को टोली बस एक स्वर में 'हर हर ा वम', बाबा अमरनाथ की जय का जयघोष करते बढ़ रही थ'। प्रकृति के साथ मानव का यह संघर्ष धना श्रद्धा व उत्साह का अद्भुत सम्मिश्रण था जिसे स्वर देने वाले प्रचण्ड श्रमवीर उस टोली के साथ न रहे थे। अपने एक उद्बोधन में उन्होंने कहा था – "माननीय प्रगति प्रकृति के साथ सतत् संघर्ष से र्मित हुई है, उसके अनुसरण द्वारा नहीं।" सतत् संघर्ष से प्राप्त मंजिल अब यात्रियों के सम्मुख थी।

अमरनाथ की गुफा जिस संकीर्ण घाटी में स्थित है, वहां पहुँचते-पहुँचते सूर्योदय हो गया। यह र्ग संकरा था और पगडण्डी के सहारे ऊपर नीचे चढ़ना उतरना पड़ता था। हिमनद के किनारे मील चलने के बाद प्रवाहमय जलधारा दिखाई पड़ी जिसमें यात्रीगण स्नान करने लगे। स्वामी जी थोड़ा छे रह गये थे इसका अनुमान कर निवेदिता कंकर के ढूहों के बीच बैठ उनकी प्रतीक्षा करने लगी। फी देर बाद स्वामी जी आये और बोले –"मैं स्नान करने जा रहा हूँ, तुम आगे बढ़ो।" विगलित ार धारा में स्वामी जी ने स्नान किया और नागा साधुओं के साथ देह पर भस्म लगाया। मात्र कौपीन रणकर शिवमय स्वामी विवेकानन्द ने ठण्ड से ठिठुरते मगर देहभान से अतीत बाबा अमरनाथ की उस हा में प्रवेश किया।

इस विराट गुहा के सूर्य रश्मियों के रहित एक हिस्से में एक एक बूँद जल के जमने से बने चिर ल शिवलिंग के सम्मुख खड़े होकर, घुटनों के बल बैठकर और फिर दण्डवत लेटकर बारम्बार प्रणाम या। यह चिर प्रतीक्षित बाबा अमरनाथ का दर्शन था। सामने वृहत चौर तुषार मण्डित महादेव

का अनादि हिमलिंग अपनी महिमामण्डित कान्ति बिखेर रहा था। स्वामी जी ने प्रत्यक्ष देख कि साक्ष महादेव ही अपनी महिमा में स्वयं प्रत्यक्ष विराजित हुये है। स्वामी जी ने दोनों हाथ फैलाकर शिवशं के पादपद्मों का स्पर्श किया। उस समय उनका शारीरिक और मानसिक दशा बहुत थका देने वा अवस्था तक पहुँच गयी और वे बड़ी कठिनाई से स्वयं को मूर्छित होने से बचा पाये। अपने भावावेग संयमित करने के लिये वे सहसा द्रुतपद से बाहर निकल आये थे।

उस समय स्वामी जी का मुख मण्डल आरक्त हो उठा था। उनके नेत्रों के सम्मुख मानो शि लोक के समस्त द्वार उन्मोचित हो गये थे। उन्होंने महादेव के श्री चरणों का स्पर्श कर लिया था। बाद उन्होंने बताया था कि कहीं वे 'मूर्छित न हो जायें' इस कारण उन्हें अपने आप को कठोरतापूर्वक संभाल पड़ा था। परन्तु स्वामी को शारीरिक थकान इतनी अधिक हुई थी कि बाद में एक डाक्टर ने कहा उस समय उनके हृदय की गति बन्द हो जाने की सम्भावना थी, परन्तु उसके स्थान पर सदा के लि उसका आकार वार्धित (डाइलेटेड) हो गया।

गुफा के बाहर लौटते वक्त स्वामी जी को श्वेत कबूतरों का वह जोड़ा दिखाई पड़ा था जिस दर्शन होने पर यात्रा को फलदायी माना जाता है। स्वामी जी ने अपनी यात्रा के फलदायी होने समाचार हिमलिंग के दर्शन के उपरान्त हिमनद के तट पर पत्थरों के ढ़ेर पर बैठी निवेदिता को सुन हुए कहा, "आज मुझे साक्षात् शिव का दर्शन हुआ। देवाधिदेव ने मुझे इच्छामृत्यु का वरदान दि है।" स्वामी जी ने दर्शन के बाद एक सहृदय नागा साधु के साथ आधे घण्टे बाद जलपान के स निवेदिता से कहा, "मैंने बड़े आनन्द का उपभोग किया था। मुझे लग रहा था कि हिमलिंग साक्ष शिव ही हैं। और वहां कोई लोभी ब्राह्मण (पण्डा) कोई व्यवसाय या कुछ भी बुरा न था, था केवल निरविच्छिन्न पूजा का ही भाव। और किसी भी तीर्थ में मुझे इतना आनन्द नहीं मिला।"

निवेदिता ने शिव के सभक्ष स्वामी जी द्वारा स्वयं को उत्सर्ग करने और प्राप्त इच्छामृत्यु वरदान की चर्चा ७ अगस्त के अपने एक पत्र में श्रीमती हेमण्ड से कुछ इस प्रकार की है—"उन्होंने (स्वा जी ने) सचमुच ही शिव के समक्ष मेरा उत्सर्ग किया। ...मुख से यह बात सुनने के बाद से मैं भावावेग दृष्टि से अत्यन्त द्रुत गति से हिन्दू होते जा रही हूँ। ...उन्होंने बताया कि शिव ने उन्हें अमरता का दिया है, अब स्वेच्छा के बिना उनकी मृत्यु नहीं होगी।" निवेदिता ने यह भी बताया कि उन्हें ल करके स्वामी जी ने कहा—'अभी तुम समझ नहीं पा रही हो। परन्तु तुमने यात्रा की है और इस प्रभाव चलता रहेगा। कर्म का फल अवश्य मिलता है। बाद में तुम्हें अधिक समझ आयेगी। कार अवश्य अपना प्रभाव लाते हैं।"

इस प्रकार अद्भुत दर्शनानुभूतियों से अविभूत हो स्वामी जी शिवमय हुए निवेदिता व अन यात्रियों के साथ पहलगाम पहुँचे। स्वामी को उनकी शिष्यमण्डली ने अपने बीच पाकर अपार हर्ष अनुभव किया। पहलगाम से इस्लामाबाद, बावन तथा ७ अगस्त को पाण्ड्रेस्थान होते हुए ८ अगस्त रात को वे लोग श्रीनगर पहुँच गये।

श्रीनगर प्रवास :—८ अगस्त से ३० सितम्बर तक लगभग दो माह तक स्वामी जी ने श्रीनगर में प्रवास किया। इस दीर्घ अवधि में वे वैराग्य से युग शिव के ध्यान में डूबे रहे और अपने से मिलने वालों से उन्होंने बड़ी उपयोगी चर्चा की। साथ ही काश्मीर में मठ स्थापना का उनका संकल्प भी टूट गया जिसने उन्हें आघातित किया और वे अधिकाधिक अन्तर्मुखी होते गये जिसका परिणाम उनका क्षीर भवानी की अनुभूतियों के रूप में सामने आता है।

श्रीनगर से वे २५ अगस्त को अपने गुरु भाई ब्रह्मानन्दजी को एक पत्र में लिखते हैं, 'मनोरम झेलम के वक्षस्थल पर नाव में तैर रहा हूँ। वहीं पर मेरा मकान हैं, और मैं प्रायः काम से मुक्त हूँ—यहाँ तक कि लिखना-पढ़ना भी नहीं जैसा है। जब जैसा मिल रहा है उसी से उदरपूर्ति की जा रही है। मानो रिप-वान-विंकल के ढांचे में ढला हुआ जीवन है।" इस समय वे बहुधा अपनी छोटी नाव पर सवार हो जाते और दूर निकल जाते। एकान्त चिरशान्त, निर्जन तट की ओर जहाँ मात्र पक्षियों का कलरव होता और फूलों और लताओं से ढ़की घने वनों वाली धरिणी की प्रछन्न नीरवता। इस एकान्त में वे घण्टो आत्मचिन्तन में निमग्न रहते। स्फूर्तिदायी वायु के झोंके उनके आनन्द को लगातार बढ़ाते चले जाते। मानो चारों ओर आनन्द ही आनन्द शिव ही शिव और सुन्दर ही सुन्दर विद्यमान हो। वे सहसा कह उठते हों—'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्।'

प्रातःकाल स्वामी जी से अनेक आगन्तुक मिलने आते जिनमें काश्मीर दरबार के उच्च पदाधिकारी भी सम्मिलित होते। स्वामी जी से अनेक विषयों पर चर्चा होती और वे राष्ट्र की मौजूदा दुर्बलता की अवस्थाओं उनके कारणों व प्रतिकार पर अपने अग्निमय विचार देते। समाज से ऊँच-नीच भावना निकाल फैंकने की इच्छा व्यक्त करते और कहते—'श्रीगुरुदेव श्रीरामकृष्ण के जीवन का आदर्श ही राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर खींच सकता है।' ऐसे ही विभिन्न अवसरों पर संकलित कुछ प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी ने कुछ इस प्रकार दिये थे।

प्रश्नकर्ता—सबल व्यक्ति द्वारा दुर्बल पर अत्याचार के वक्त हमें क्या करना चाहिए? स्वामी जी—'क्या करोगे? निश्चय ही बाहुबल के योग से प्रबल को निरस्त कर देना होगा।' क्षमा के सन्बन्ध में एक अन्य प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने कहा—"जहाँ दुर्बलता व जड़ता है क्षमा का वहाँ कोई मूल्य नहीं युद्ध ही श्रेयस्कर है। जगत एक रणक्षेत्र है—युद्ध करके अपना पथ साफ करो।"

वास्तविक अधिकार की रक्षा के लिये प्रतिकार धर्म सम्मत है या नहीं? यह पूछे जाने पर स्वामी जी ने कहा—'संन्यासी के लिये अप्रतिरोध ही धर्म है, परन्तु आत्मरक्षा करना गृहस्थ का कर्तव्य है।'

स्वामी जी जब पिछली बार काश्मीर आये थे तो उन्हें आश्वस्त किया गया था कि काश्मीर में मठ तथा संस्कृत विद्यालय की स्थापना के लिये राज्य सरकार की ओर से उन्हें एक उपयुक्त भू खण्ड दिया जायेगा। यूरोपियनों की छावनी के लिये निर्धारित कुछ स्थानों में से नदी तट पर एक भूखण्ड का चयन कर स्वामी जी की शिष्याओं ने वहाँ तम्बू लगा दिये और स्वामी जी भी वहाँ आकर तरह-तरह से

इस प्रस्तावित मठ के बारे में विचार करने लगे थे। उनके एक पत्र को देखने से लगता है वे इस मठ की स्थापना के बारे में काफी आशावान थे। अगस्त १८९८ में वे गुरुभ्राता ब्रह्मानन्द जी को लिखते हैं— "काश्मीर के राजा साहब जमीन देने के लिये प्रस्तुत हैं। मैंने जमीन देख भी ली है। यदि प्रभु की इच्छा होगी तो अब दो चार दिन में कार्य हो जायेगा। अबकी बार यहां पर एक छोटा सा मकान बनवाना है। जाते समय न्यायाधीश मुखर्जी की देखरेख में छोड़ जाऊँगा।"

मगर उनके इस कार्य में प्रभु की इच्छा नहीं थी क्योंकि महाराजा के उत्साह और सहमति के बावजूद ब्रिटिस सरकार के रेजिडेन्ट सर एडैल्बर्ट द्वारा उस पर निषेधाधिकार लगा देने से यह जमीन अंततः स्वामी जी को नहीं मिल सकी। अपने उन्हें इस संकल्प से च्युत हो जाना पड़ा जिसे उन्होंने ईश्वर की इच्छा जानकर ग्रहण किया। इस घटना से वे मर्महत भी हुए और उन्होंने यह भी जाना कि काश्मीर या किसी अन्य देशी राज्य में उनके लिये संस्था गठन कर पाना संभव नहीं है।

२० अगस्त, शनिवार को स्वामी जी अमेरिकन कौंसल जनरल तथा उनकी पत्नी के आमंत्रण पर वे सुंग नामक एक व्यक्ति के साथ दो दिन के लिये डल झील के तट पर गये और सोमवार को लौट आये। ३ सितम्बर को उनकी शिष्यायें एकान्त साधना हेतु अच्छाबल की यात्रा पर गई और स्वामी गन्धारबल चले गये। १८ अगस्त के पत्र में उन्होंने मेरी हेल को लिखा—"कुछ दिनों के लिये मैं दूर (संभवतः गन्धारबल) चला गया था। अब मैं महिलाओं का साथ देने जा रहा हूं। तब हमारी टोली, पहाड़ के पीछे स्थित कलकल ध्वनि करती एक धारा से युक्त बन के एक शान्तिपूर्ण स्थान में बुद्ध की भाँति पद्मासन लगाकर देवदार वृक्षों के नीचे गम्भीर और लम्बे ध्यान में डूब जायेगी। ऐसा लगभग एक महीने चलेगा।"

अच्छाबल से १० सितम्बर को वे मार्तण्ड मन्दिर देखने गये और ११ को स्वास्थ्य खराब होने से श्रीनगर लौट आये। १७ सितम्बर को उन्होंने खेतड़ी नरेश को लिखा—"यहां पर मैं दो सप्ताह बड़ा अस्वस्थ रहा अब ठीक हो गया हूँ।"

"कालीमाता" : अमरनाथ दर्शन के कुछ पूर्व तथा बाद में स्वामी जी का मन शिव भाव में विभोर था, परन्तु किसी अज्ञात कारणवश 'स्वामी जी का चित्त शिव से शक्ति की ओर आकृष्ट हो गया सा प्रतीत हो रहा था।' वे सर्वदा रामप्रसाद के भजन गाते, शिशु तुल्य भावमग्न रहा करते।' निवेदिता उस समय की घटनाओं को अपने संस्मरणों में संजोकर आगे लिखती है, "एक बार उन्होंने हममें से कई लोगों से कहा था कि वे जिधर भी दृष्टिपात करते हैं, उन्हें जगदम्बा की उपस्थिति का बोध होता है। मानो वे साकार रूप से कमरे में ही विराजमान हों। वे सर्वदा जगदम्बा के बारे में अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से बोलने के अभ्यस्त हो गये थे।"

उस समय स्वामी जी का अधिकांश समय माँ के ध्यान चिन्तन में बीतता था। न उन्हें भूख-प्यास थी, न शरीर का भान। वह तो लुप्त हो गया था जो कभी प्रचण्ड व्याख्याता था, जिसकी इच्छा मात्र से समय की गति पलट जाती थी, वहां रह गया था अरण्यवासी, चिरवैरागी, मां मां के करुण क्रन्दन

में डूबा अकिंचन संन्यासी। इन वन-वितानों में आधी रात तक समाधिस्थ रहने वाले विवेकानन्द को नौकागृह में विश्राम व प्रतीक्षा के समय भी लोगों ने समाधि में डूब जाते देखा था। उनकी तीव्रव्याकुलता ने उन्हें माँ जगदम्बे के अद्भुत दर्शन में डूबने का सौभाग्य प्रदान किया और उन्होंने अपने इस अनुभूति को अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित हो कागज पर उतार दिया जो उनकी प्रसिद्ध रचना 'काली माता' के रूप में जानी जाती है। अपनी इस अनुभूति व कविता के बारे में उन्होंने शिष्याओं से कहा था—"देखा यह सब सत्य है, अक्षरशः सत्य है। माँ सचमुच ही उसके पास आती है। मैंने अपने जीवन में इसे प्रत्यक्ष किया है, क्योंकि मैंने साक्षात् मृत्यु का आलिंगन किया।"

इस समस्त घटनाचक्र को निवेदिता ने शब्दों में बांधने का प्रयास किया था जो पढ़ने से नित नया प्रतीत होता है। वे लिखती हैं—"अब से वे मनोजगत में जो कुछ भी घोर पीड़ादायी तथा दुर्बोध्य था उसी पर पूरा मनोयोग देने लगे। इसी पथ के द्वारा अब वे इस प्रपंच के पीछे विद्यमान अद्वय ब्रह्म की उपलब्धि करने को कृतसंकल्प हुए। ....रोग और पीड़ा देखते ही उन्हें स्मरण हो आता कि वे ही पीड़ित हैं, वे ही पीड़ा हैं, और वे ही पीड़ादात्री हैं! काली! काली! काली!!"

कविता की रचना के साथ भाव के अतिरेक सह पाने में अक्षम स्वामी जी का शरीर फर्श पर लोट गया। थोड़ा बल लौट आने पर वे शिष्याओं के बजरे में जाकर उस रचना को रख आये। जब शिष्यायें वापस आई तो उन्हें स्वामी जी द्वारा मां जगदम्बा की महिला दर्शन व अनुभूतियों से युक्त भाव गाम्भीर्य, शब्दविन्यास, छन्द के गुरु गम्भीर विस्तार वाली, जागतिक ध्वंसलीला के निपुण शब्दचित्रावली वाली 'काली माता' की पंक्तियां देखने को मिली जिनको अन्तिम पंक्तियों में उन्होंने पढ़ा—"नाम है आतंक तेरा। मृत्यु तेरे श्वास में है।

चरण उठकर सर्वदा को, विश्व एक मिटा रहा है।"

"साहसी जो चाहता है दुख, मिल जाना मरण से।

नाश की गति नाचता है, माँ उसी के पास आई॥"

इस कविता की रचना के पूर्व कई दिनों से स्वामी अपनी नौका में काफी दूर एकान्तवास करने लगे थे। एक डाक्टर जो उनके पास आने जाने लगा था को उनके उपयोग की वस्तुयें लेकर वहां जाने की अनुमति थी। कविता लेखन के दूसरे दिन जब वह नाव में पहुँचा तो स्वामी जी को ध्यानमग्न देखकर वापस लौट आया। अगले दिन उसे बताया गया कि स्वामी यह आदेश देकर की कोई उनका अनुसरण न करें क्षीर भवानी देवी दर्शन के लिये चले गये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां विवेकानन्द बिलकुल दूसरे ही रुप में दिखाई पड़ते हैं। यह सब जानकर हम स्वयं के बारे में सोचने को मजबूर हो जाते हैं हमें कर्म व धर्म के पथ पर किस प्रकार अपने जीवन का संतुलन बनाना चाहिए। अब हम उनकी उसी महत्वपूर्ण यात्रा के वर्णन पर आते हैं जो उनके जीवन का एक नया अध्याय खोलता है।

क्षीर भवानी की अनुभूतियाँ—३० सितम्बर के माँ काली के अपूर्व भाव में डूबे माँ के शिशु विवेकानन्द क्षीर भवानी के पवित्र नदी तट पर पहुँचे। माँ के मन्दिर में दूध निवेदित होने से इसे क्षीर भवानी नाम से जाना जाता था जो विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा खंडित कर दिया गया था।

स्वामी जी क्षीर भवानी के जंगलों में उग्रतर तपस्या में डूब गये जिसकी अधिकांश अनुभूतियां प्रकट नहीं हो सकी क्योंकि इन्हें उनके गुरुभाइयों ने सर्वसाधारण के समक्ष रखना उचित नहीं समझा। ये अनुभूतियां धर्म जीवन के गूढ़ रहस्यों को लेकर थी जो प्रकृति की मायिक संस्कारों के ऊपर उठने के उनके सफल प्रयासों का अंग थी। कुछ बातें जो उनके द्वारा जनाई गई थी उनका उल्लेख किया जा रहा है।

क्षीर भवानी में मां के असहाय शिशु के रूप में स्वामी जी ने कदम रखा था जो देवी मां की प्रेरणा का परिणाम कहा जा सकता है। मानो वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों पर काम-काज की व्यस्तता से चढ़े प्रलेप को पूरी तरह धो डालने को कृतसंकल्प हों। उन दिनों को देवी मां के समक्ष प्रतिदिन होम करते, एकमन दूध का चावल-बादाम आदि के साथ खीर बनाकर भोग देते। साधारण भक्त के समान काफी समय तक बैठकर माला जपते और एक ब्राह्मण पंडित की छोटी बच्ची को उमा के रूप में पूजते। यह पूजा उस पूजा का स्मरण दिलाती है जो श्रीरामकृष्ण द्वारा भी सम्पन्न की गई थी।

क्षीर भवानी माता का मन्दिर विदेशी यवनों के आक्रमण में खण्डित हो गया था। एक दिन विधर्मियों के अत्याचार जनित ध्वंशावशेष देखकर स्वामी जी खेद के साथ कह उठे—"किस प्रकार लोगों ने ऐसा अत्याचार चुपचाप सह लिया? प्रतिकार की जरा सी भी चेष्टा नहीं की। यदि मैं उस समय रहता तो कदापि ऐसा नहीं होने देता, अपने प्राण देकर भी मां की रक्षा करता।" स्वामी के इस कथन में उनमें स्थित विद्या का 'मैं' स्पष्ट झलकता है। श्री रामकृष्ण के अनुसार यह हलका-सा आवरण मां ने रख छोड़ा है अपना कार्य कराने के लिए। आज मां के आगे ही उस आवरण को छिन्न होना था। वह समय आ गया था। उसी समय उन्होंने मां के मन्दिर से देववाणी सुनी, "यदि यवनों ने मेरा मन्दिर ध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर भी दिया तो इससे तेरा क्या? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ।"

स्वामी जी ने इस देववाणी को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया और वे इसे अपने मन का भ्रम जान पुनः विचार करने लगे—मन्दिर का तो जो होना था हो चुका अब पुनः इसका निर्माण किया जाना ही सार्थकता है। अतः उन्हें भिक्षाटन कर यह कार्य करना चाहिए। पर उसी क्षण उन्हें मां की स्पष्ट वाणी सुनाई पड़ी और मां ने उनसे कहा—"बेटा! मैं यदि चाहूँ तो असंख्य मन्दिरों और मठों की स्थापना कर सकती हूँ। इसी क्षण यहां एक विशाल सात-मंजला सुवर्ण मन्दिर निर्मित हो सकता है।" अब स्वामी जी ने जान लिया कि यह देववाणी सत्य थी और मन्दिर की यह दशा मां की ही इच्छा थी वे इच्छामयी जो है। देववाणी के बारे में इस भ्रमण के उपरांत जब काश्मीर प्रसंग पर स्वामी जी के शिष्य शरतचन्द्र ने स्वामी जी से पूछा और स्वयं स्वामी जी के पूर्व विचारों का जिक्र किया कि हमारे भीतरी भावों की प्रतिध्वनि ही देववाणी है तब स्वामी जी ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया। वे बोले, "भीरत हो या बाहर इससे क्या? यदि तुम अपने कानों से मेरे समान ऐसी अशरीरी वाणी को सुनो तो क्या उसे मिथ्या कह सकते हो? देववाणी सचमुच सुनाई देती है, हम लोग जैसे वार्तालाप कर रहे हैं ठीक इसी प्रकार से।'

देवी मां की कृपा से वह आवरण हट गया था जिसका उल्लेख श्री गुरुदेव ने यह कहते हुए किया था—'नरेन्द्र के हृदय में अज्ञान का एक पतला आवरण मां ने ही रख दिया है। उसके द्वारा अनेक कार्य

करा लेने के लिए।" तो क्या उनके कार्यों की इति हो गई थी ? निश्चय ही उनके द्वारा शुरू किया कार्य जमा चुका था जिसे समय का सैलाब अब आसानी से मिटा नहीं पाये इस हेतु महान आत्माओं का जागरण हो चुका था। उन्होंने स्वयं उद्घोषित किया था—"सुदीर्घरजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्राय: अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जाग्रत हो रहा है। ..... जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। ..... हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब वह फिर सो भी नहीं सकती।" आवरण हट जाने पर स्वामी जी ने अनुभव किया कि महामाया की विराट इच्छा से ही वे परिचालित हो रहे हैं जैसा उनके गुरुदेव ने कहा था—"तू क्या अपनी इच्छा से करेगा ? जगदम्बा तेरी गर्दन पकड़कर करा लेगी। तू न करे तेरी हड्डियां करेंगी।" आज उनके शब्द सही हो गये थे। मां की कृपा से उनके मन-प्राण एक अनिर्वचनीय आनन्द धारा में डूब गए जो उन्हें सराबोर किये जा रहा था। इन अवस्था में वे ६ अक्तूबर को अपराहन श्रीनगर अपनी टोली के पास लौट आये।

शिष्याओं ने ६ अक्तूबर की अपराहण देखा कि स्वामी जी की नौका प्रवाह की दिशा में उन्हीं की ओर आ रही है और स्वयं स्वामी जी पीले रंग के फूल हाथ में लिए नौका पर सामने ही खड़े हैं। उन फूलों को शिष्याओं के सर से छुआते वे बोले "इसे मैंने मां को निवेदित किया था।" इसके बाद स्मित हास्य लिए वे बैठते हुए बोले, "अब और हरि ऊँ नहीं अब केवल मां मां।" उनके इस भाव प्रवाह को कोई बाधित नहीं करना चाहता था। सभी बजरे में शान्त और मौन थे तभी स्वामी जी पुन: कहने लगे—"मेरा स्वदेश प्रेम बह गया है। सब कुछ चला गया है। अब है तो केवल मां मां।" थोड़ा मौन हुए फिर बोले, "मुझ से बडी गलती हुई है। मां ने मुझे बताया, भले ही म्लेच्छों ने मेरे मन्दिर में प्रवेश किया और मेरी प्रतिमा को अपवित्र किया उससे तुम्हें क्या ? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ ? अतएव अब मेरा स्वदेश प्रेम जा चुका है। अब मैं एक छोटा-सा शिशु मात्र हूँ।"

स्वामी जी के इस परिवर्तित भाव और माँ माँ की पुकार से हमें उस समय की स्मृति हो आती है जब तीव्र वैराग्य व ईश्वर दर्शन की व्याकुलता लिये वे श्री रामकृष्ण लीला सहधर्मिणी परम अराध्या श्री श्री माँ सारदा देवी के सम्मुख उपस्थित हो बोले थे- "आजकल मेरे सामने से सब कुछ उड़ा जा रहा है।" माँ ने कहा—"मुझे मत उड़ा देना।" इस पर स्वामी जी बोल पड़े थे-- "तब मेरी क्या गति होगी। गुरु के श्री चरण को उड़ा देने पर ज्ञान ठहरेगा कहाँ।" तब श्री श्री माँ ने ज्ञान के उस असली स्वरूप को प्रकट किया जिसकी उपलब्धि स्वामी जी को अब हुई थी। माँ ने स्वामी जी से कहा था, "ज्ञान होने पर ईश्वर आदि सब उड़ जाते हैं। अन्त में देखता है, सर्वत्र एकमात्र माँ ही है। सब कुछ मिलकर एक हो जाता है। बस यही तो सीधी-सादी बात है।" मगर यह सीधी-सादी बात स्वामी जी के लिए कितनी पेचीदगी से चरितार्थ हुई थी यही उनके अलौकिक दैवीय जीवन का रहस्य था।

स्वामी जी के इस जीवन रहस्य को समझने उनकी पाश्चात्य शिष्यायें सक्षम नहीं हो पा रही थी। यह दृश्य उस दृश्य से बिलकुल विपरीत था जो इस यात्रा के पूर्वार्द्ध में उन्हें देखने को मिला था। भारत दर्शन के लिए शिष्याओं के पहाड़ों की ओर लाते समय स्वामी जी उनसे विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करते समय को पीछे छोड़ दिया था। अल्मोड़ा में तो वे उनके लिए प्रशिक्षण केन्द्र ही चला चुके थे मगर

अमरनाथ यात्रा से सब कुछ बिलकुल बदल गया था। स्वामी जी के आदर्श हेतु स्वयं को भारत मां व मानवता की सेवा में समर्पित कर देने वाली शिष्याओं का चिन्तन होना स्वाभाविक ही था। उन्हें स्वामी जी के व्यक्तित्व के गहन पक्ष का दिग्दर्शन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसे उनके कर्म प्रेरणा ने आच्छादित किये था। इसके उपरान्त कई दिनों तक उन्होंने स्वामी जी का दर्शन नहीं पाया। वे अपनी नौका में ध्यानमग्न रहा करते अथवा तट भूमि पर अपने आप में इतने डूबे रहते की नाव की छत पर बैठी शिष्याओं का तक उन्हें भान न होता था। अतः शिष्याओं ने वापस लौट जाना उचित समझा स्वयं स्वामी जी इसका संकेत दे चुके थे और पत्र द्वारा अपने गुरुभ्राता स्वामी सारदानन्दजी को बुलावा भेज चुके थे।

अब स्वामी जी के चार माह के दीर्घ काश्मीर प्रवास का अन्त निकट आया और वे ११ अक्तूबर को बारामूला की ओर चल पड़े। लौटते समय उनका भाव पूर्णतया अन्तर्मुखी था वे शिष्याओं से बात तक नहीं करते थे और उनके बजरे में प्रवेश भी नहीं करते थे। निवेदिता ने उनकी शारीरिक दुर्बलता की ओर इशारा करते हुए उनपर कर्म व आध्यात्मिक अनुभूतियों के व्यापक परिणामों को अपनी पुस्तक में इन शब्दों में प्रकट किया है—"भारत लौटने के बाद से ही वे जिस कठोर परीश्रम में लगे हुए थे उसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य पूरी तरह बिगड़ चुका था। इसके अतिरिक्त सम्प्रति उन्हें जो महान उपलब्धि हुई थी, उसके परिणामस्वरूप भी उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वे स्वयं इसका बोध कर पाये थे।"

१२ अक्तूबर को शिष्याओं के समक्ष अपनी कविता 'काली माता' की पंक्तियां गुनगुनाते उन्हें स्वयं प्रत्यक्ष जीने की बात कहते हुए वे उनसे बोले--"मेरी अब कोई कामना नहीं है। मैं केवल गंगातट पर मौनी कौपीनमात्रधारी परिव्राजक का जीवन बिताना चाहता हूँ। मुझे किसी भी चीज की आवश्यकता नहीं। स्वामी जी अब सदा के लिए दिवांगत हो गये। जगत को शिक्षा देने का भार अपना ही उत्तरदायित्व समझने वाला मैं भला कौन हूँ? यह तो केवल भ्रम और अहंकार था। जगदम्बा को मेरी आवश्यकता नहीं, बल्कि मुझे ही जगदम्बा की आवश्यकता है। जिसे इस अवस्था की उपलब्धि हो चुकी है, उसके लिए निष्काम कर्म भी माया छोड़कर और कुछ नहीं। प्रेम ही एकमात्र पथ है।"

१६ अक्तूबर को स्वामी जी अपने शिष्य सदानन्द के साथ लाहौर से सीधे कलकत्ता के लिए चले और शिष्याओं को स्वामी सदानन्द दिल्ली आगरा आदि स्थानों का दर्शन कराते १८ अक्तूबर को वापस कलकत्ता लौट आये। वापस लौटकर स्वामी जी ने नीलाम्बर बाबू के भवन में स्थत मठ में निवास किया पर उनपर हिमालय की इस यात्रा का प्रभाव किसी भी प्रकार दूर होने का नाम ही नहीं लेता था। वे बिलकुल मौन रहते और किसी से भी कोई बातचीत नहीं करते। एक आंख में जमा खून तथा चिरमौन में बैठे स्वामी जी के पास जाने का साहस किसी को नहीं हो पाता था। उनके गुरुभाइयों को उनके मन की इस अवस्था से चिन्ता होने लगी क्योंकि यह उनके जागतिक जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती थी अतः अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए स्वामी ब्रह्मानन्द ने स्वामी जी के शिष्य शरतचन्द्र से कहा था—"काश्मीर से लौटने के बाद से ही स्वामी जी किसी से वार्तालाप आदि नहीं करते, चुपचाप बैठे रहते हैं। तुम स्वामी जी के साथ हलकी-फुलकी बातें करके उनके मन को नीचे उतारने का प्रयास करो।" शिष्य ने जब यह प्रयास किया तो स्वामी जी उससे बोले—"अमरनाथ दर्शन के बाद से ही चौबीसों घण्टे शिवजी मानो मेरे मस्तक पर सवार रहते हैं, कैसे भी उतरते नहीं।"

धीरे-धीरे उनकी अवस्था में परिवर्तन आया और परमहंस अवस्था के शीर्ष पर अवस्थित उन्होंने ४ वर्ष तक देश-विदेश में भ्रमण व संगठन का कार्य किया जो केवल उनके लिए ही संभव था। उन्हीं के शब्दों में यदि कोई दूसरा विवेकानन्द होता तो समझ पाता कि विवेकानन्द ने क्या किया है। उनके गुरु भाई स्वामी तुरियानन्द के शब्दों में, "उनकी पुस्तकों में उनके जीवन का बीसवां हिस्सा भी अभिव्यक्त नहीं हुआ है। वे पूर्ण मानव थे। हमें छकाकर चले गये। जितने दिन बीतते हैं उतना ही लगता है उनके साथ और अधिक समय क्यों नहीं बिताया। उनकी बातें और अधिक क्यों नहीं सुनी।" काश हमारे भीतर भी उन्हें जानने, सुनने, पढ़ने व समझने की जिज्ञासा जाग्रत हो जाय।

●

अपने विचारों को दूसरे में प्रचार करने के लिए जल्दी नहीं करनी चाहिए।

शक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति है—अपने को शान्त रखना और स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना।

हमको चाहिए – हृदय और मस्तिष्क का समन्वय।

यदि हृदय और मस्तिष्क में मतभेद हो, तो हृदय का अनुगमन करो।

—स्वामी विवेकानन्द

निन्दक नियरे राखिए

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द

[स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी रामकृष्ण आश्रम, राजकोट से गुजराती में प्रकाशित लोकप्रिय मासिकी 'रामकृष्ण ज्योत' के ऊर्जस्वी सम्पादक हैं। उनका प्रस्तुत लेख मौलिक हिन्दी में लिखा गया है जो पाठकों के लिए विशेष उपयोगी है। —सं०]

भगवान बुद्ध मगध की राजधानी राजगृह के समीप वेणुवन में निवास कर रहे थे। राजधानी में भारद्वाज नामक एक क्रोधी ब्राह्मण रहता था। उसके निकट का कोई रिश्तेदार भगवान बुद्ध का शिष्य बना। ब्राह्मण ने जैसे ही यह खबर सुनी—वह अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान बुद्ध के पास जाकर गाली प्रदान करने लगा। प्रत्युत्तर देने के बदले अति प्रशांत चित्त से भगवान बुद्ध ने गालियाँ सुनी। ब्राह्मण जब थक कर बोलना बंद कर चुका तो भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण से पूछा; 'हे ब्राह्मण देवता, आपके घर पर जब कोई अतिथि आता है तो क्या आप उन्हें भोजन सामग्री देते हैं?' ब्राह्मण ने तुरन्त कहा, 'अवश्य, मैं अतिथि धर्म ठीक से जानता हूँ। अतिथि को खाना-पीना एवम् अन्य जरूरी चीजें भी देता हूँ।' भगवान बुद्ध ने पूछा, "हे ब्राह्मण देवता, अगर वह अतिथि आपकी वस्तुएँ न स्वीकारे तो आप बता सकते हैं कि वे वस्तुएँ किनके पास रहती हैं?"

'क्यों? वे तो मेरे पास ही रहेंगी न?' —ब्राह्मण ने जवाब दिया। भगवान बुद्ध ने सस्मित कहा, 'हे ब्राह्मण देवता! आप मेरे पास गालियों की भेंट लेकर आये थे—किंतु मैं क्रोधित न हुआ, स्वस्थ रहा, आपकी गालियाँ मैंने स्वीकारी नहीं—इसलिए यह भेंट अब आपके पास ही रहेंगी न?' ब्राह्मण के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

भगवान श्री कृष्ण गीता के बारहवें अध्यान में कहते हैं कि निंदा-स्तुति को समान समझने वाले भक्त ही मुझे प्रिय हैं। क्या जीवन-व्यवहार में निंदा-स्तुति को समान समझकर स्वस्थ रहना संभव है? हाँ, आज भी ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं—जो इस बात का प्रमाण है कि यह संभव है।

रामकृष्ण मठ तथा मिशन के दसवें परमाध्यक्ष महाराज कुछ वर्षों पूर्व मिशन के एक केन्द्र में पधारे थे, उस समय एक बालक ने पूज्य महाराजश्री के पास से मंत्र दीक्षा लेने की हठ पकड़ ली। उसकी माता ने भी उन्हीं के पास से मंत्र दीक्षा ली थी इसीलिए उस बालक ने भी बारबार अनुरोध किया। साधारणतया पूज्य महाराज बालकों को मंत्र दीक्षा देते न थे किंतु इन दोनों की या कुछ प्रार्थना से वे द्रवित हो उठे और उस बालक को मंत्र दीक्षा दी। मंत्र दीक्षा पूर्ण होने के पश्चात् बालक के पिता को इस बात का पता चला—तब वे क्रोध में आ गये। वे एक बड़े डॉक्टर थे और कट्टर नास्तिक थे। दोपहर को जब पूज्य महाराजश्री अपने कक्ष में अकेले बैठे थे तभी वे (डॉक्टर) अचानक आ पहुँचे और

गालियों की बौछार उन पर करने लगे। क्रोधावेश में विवेकहीन हो गये थे। उन्होंने महाराजश्री पर आक्षेप करते हुए कहा कि, उन्होंने उनकी सम्मति के बिना उनके पुत्र को मंत्र दीक्षा देकर उनसे छल किया है।"

पू० महाराजश्री ने शान्त चित्त से सब कुछ सुना तथा प्रत्युत्तर में 'मौन' रहे। इसके लगभग दो साल बाद डॉक्टर का अद्भुत हृदय-परिवर्त्तन हुआ और वे भक्त बन गये और मिशन के सेवा कार्यों में सक्रिय सहयोग देने लगे।

जब कोई व्यक्ति सद्जीवन जीने का प्रारंभ करता है तब उसे निन्दा का सामना अवश्य करना पड़ता है। संसार में बहुसंख्यक लोग आदर्शवादी जीवन जीने में विश्वास नहीं रखते। उन्हें तो यह सब ढकोसला ही लगता है। असामान्य लगता है। ऐसे साधारण लोग आदर्शवादी लोगों की निंदा करे तब उन्हें क्या करना चाहिए? इस संदर्भ में हिन्दी में एक प्रसिद्ध उक्ति है—

"हाथी चले बाजार में कुत्ता भोंके हजार।
साधु को दुर्भाव नहीं निंदे चाहे संसार॥"

'श्री रामकृष्ण वचनामृत' में इस विषय पर सुन्दर मार्ग दर्शन मिलता है—

५वीं मार्च १८२२, दक्षिणेश्वर मन्दिर में श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ प्रसन्नमुख हो वार्तालाप कर रहे हैं। एक उन्नीस साल के लड़के की ओर देखते हुए श्रीरामकृष्ण बड़े आनन्द के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। लड़के का नाम है नरेन्द्र*।

विषयासक्त संसारियों की बातें चल रही हैं। ये लोग ईश्वरभक्त, धर्मपरायण व्यक्तियों की निन्दा किया करते हैं।

श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र से)—क्यों नरेन्द्र, भला तू क्या कहेगा? संसारी मनुष्य तो न जाने क्या-क्या कहते हैं। पर याद रहे कि हाथी जब जाता है, तब उसके पीछे-पीछे कितने ही जानवरबेहतर चिल्लाते हैं। पर हाथी लौटकर देखता तक नहीं। तेरी कोई निन्दा करे तो तू क्या समझेगा?

नरेन्द्र—मैं तो यह समझूंगा कि कुत्ते भौंकते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—अरे नहीं, यहाँ तक नहीं। (सबका हास्य।) सर्वभूतों में परमात्मा का ही वास है। पर मेल-मिलाप करना हो तो भले आदमियों से ही करना चाहिए। बुरे आदमियों से अलग ही रहना चाहिए। बाघ में भी परमात्मा का वास है, इसलिए क्या बाघ को भी गले लगाना चाहिए? (लोग हँस पड़े।) यदि कहो कि बाघ भी तो नारायण है, इसलिए क्यों भागें? इसका उत्तर यह है कि जो लग कहते हैं कि भाग चलो, वे भी तो नारायण हैं, उनकी बात क्यों न मानो?

---

* बाद में ये ही स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीरामकृष्ण : नरेन्द्र तुम क्या करते हो ? संसारी लोग तो कितनी बातें करते रहते हैं ? परंतु हाथी जब रास्ते पर जा रहा हो तब कितने ही प्राणी उनके पीछे पड़ते हैं··· परंतु हाथी तो उनके सामने देखता तक नहीं। तुम्हारी कोई निंदा करे तो तुम्हें कैसा लगे ?

इसके पश्चात् श्रीरामकृष्ण देव ने हाथी और महावत नारायण वाली कहानी सुनायी। "अगर बुरा आदमी अपना कोई नुकसान करने के लिए आये या नुकसान करे, तो क्या हम चुप रहें ?" एक भक्त के इस प्रश्न के उत्तर में श्री रामकृष्ण देव ने कहा, 'लोगों के साथ रहना हो तब तो दुष्ट लोगों से अपनी रक्षा करने के लिए कभी-कभी थोड़ा तमोगुण दिखाना भी आवश्यक होता है, परंतु, वह नुकसान करेगा यह सोचकर उसका नुकसान करना योग्य नहीं है।

इसके बाद 'साँप और ब्रह्मचारी' वाली कहानी सुनाकर श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, 'दुष्ट आदमियों के सामने फुफकारना चाहिए। काटो मत किन्तु फुफकारो।"

'तो क्या अन्याय का प्रतिकार न करें ?' अवश्य करें परंतु सज्जन व्यक्ति सज्जनतापूर्वक प्रतिकार करते हैं। इस संबंध में एक सुप्रसिद्ध कहानी है :

एक भक्त नाव में बैठकर जा रहा था। उसके साथ बैठे लोग घोर संसारी थे वे भक्त का मजाक उड़ाने लगे। भक्त निर्विकार होकर प्रभु का स्मरण कर बैठा रहा। नाव नदी के मध्य में आ पहुँची। इन लोगों की निंदा की वर्षा भक्त पर बरसती ही रही। अंत में भगवान से न रहा गया। वे तुरन्त भक्त से सामने प्रकट हो गये और बोले, अगर तुम कहो तो अभी इस नाव को पलट कर सबको डुबा दूँ और तुम्हें बचा लूँ।" भक्त ने हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभू, पलटाना ही हो तो इस नाव को नहीं, इन लोगों की बुद्धि को पलटा दें।"

इससे समस्या का समाधान हो जायभा। इन बेचारों की बुद्धि मारी गयी है। इसलिए तो धर्म की बात नहीं समझ सकते हैं ग ?"

एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को एक व्यक्ति ने कहा, 'कुछ लोग आपकी बहुत निंदा करते रहते हैं।' कुछ देर तो वे विचार मग्न रहे और फिर उन्होंने कहा, 'मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने उन लोगों का कोई भला किया हो··· तो फिर क्यों निंदा करते हैं ?' इसका अर्थ यह कि— जिनकी वे सहायता करते वे ही बाद में उनकी निंदा करते। परंतु इससे उनके स्वभाव में कोई फर्क नहीं पड़ा। वे दूसरों का भला करते ही रहे।

एक साधु नदी किनारे बैठे थे। उन्होंने देखा कि एक बिच्छु पानी में गिर पड़ा। उन्होंने करूणावश बिच्छ को पानी में से निकाल बाहर रखा। जमीन पर आने के साथ ही बिच्छु ने साधु को डँस दिया। कुछ देर बाद वह फिर पानी में गिर पड़ा और तड़पने लगा। साधु को दया आयी और फिर से उसे पानी में से बाहर निकाला। जमीन पर आते ही बिच्छ ने फिर से उन्हें डँस दिया। कुछ देर बाद फिर से वह पानी में गिरा और साधु ने फिर से उसे बचाया। एक आदमी यह सब देख रहा था। उसने आश्चर्यपूर्वक उस साधु से पूछा, 'आपको बार-बार यह बिच्छ डँस लेता है, फिर भी आप उसे क्यों

बचाते हैं ? साधु ने कहा, 'बिच्छू का स्वभाव ही है--डँसना और साधु का स्वभाव है दूसरों का भला करना। बिच्छू अपना स्वभाव छोड़ता नहीं तो फिर मुझे अपना स्वभाव क्यों छोड़ना चाहिए !'

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि, 'जब कोई तुम्हारी निंदा करे—तब उसे आशीर्वाद दो, जरा सोचो तो सही, वह तुम्हारे इस दुष्ट अहम् को मिटाकर कितना भला करता है !" वास्तव में आध्यात्मिक साधना का अंतिम उद्देश्य तो इस क्षुद्र अहम् को पूरी तरह से मिटा देना ही है। राजयोग, कर्मयोग, भक्ति योग, ज्ञान योग ये सभी योग इस दुष्ट अहम् को भूला देने में अथवा मिटा देने में या तो विराट् अहम् को स्थापित करने के लिए सहायकरूप होते हैं। इसलिए हमें निंदा करने वाले व्यक्ति के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि उसने हमारे इस क्षुद्र 'अहम्' को दूर करने में सहायता की ! और फिर, शास्त्रों में तो कहा गया है कि निंदक का पुण्य जिसकी वह निंदा करता है उसके खाते में जमा होता है। इस प्रकार, बिना कुछ किये हुए हमारे एकाउन्ट में उनका अपना पुण्य ट्रान्सफर करने के लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए !

अमेरिका का एक समाचार-पत्र विलियम मेकिन्ले का सख्त विरोधी था। इसलिए जब वे प्रेसिडेन्ट पद के लिए चुनाव प्रचार में निकले तब इस समाचार-पत्र ने एक प्रेस रिपोर्टर को उनके पीछे लगा दिया। उसका कार्य इतना ही था कि मेकिन्ले के साथ-साथ ट्रेन में जाता और उनके विरोध में समाचार-पत्र के लिए कुछ समाचार भेजते रहना। उसने यह कार्य पूरे उत्साह से शुरू किया। मेकिन्ले को भी इस बात का पता चला परंतु उन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया।

एक दिन उन्होंने देखा कि यह रिपोर्टर ट्रेन में भयंकर ठंड में बिना कुछ ओढ़े हुए ही सो रहा है। उन्होंने अपना ओवर कोट उस पर डाल दिया। जब रिपोर्टर की नींद खुली और उसे जब इस बात का पता चला तब बिना किसी विलम्ब के उसने समाचार-पत्र को अपना इस्तीफा तार द्वारा भेज दिया। जिस व्यक्ति का इतना विशाल हृदय हो कि वह अपनी आलोचना करने वाले के प्रति भी मैत्री भावना रखे, उसके विरुद्ध निन्दा का सुर अलापते रहना भला क्या उसके लिए संभव था ?

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा था, 'मुझ पर आलोचना के जितने पत्र आते हैं—उनका जवाब देना तो दूर रहा, यदि उन्हें सिर्फ पढ़ूँ तो भी मुझे अन्य सभी कामकाज छोड़ देने पड़े। मैं यथा संभव अच्छी तरह कार्य करता हूँ। अगर मैं सच्चा हूँ तो अंत में दूसरों ने जो कुछ मेरे विरोध में कहा है—वह सब मिथ्या ही प्रमाणित हो जायगा। और यदि मैं गलत होता हूँ तो हजारों देवता भी मेरी सच्चाई को साबित करने में असफल होंगे।

दो सिद्धांतों में अगर दृढ़ श्रद्धा होगी तो हम अपनी निंदा सुनकर भी विचलित नहीं होंगे। पहला 'सत्यमेव जयते', अंत में सत्य की विजय अवश्य होती है। दूसरा कर्म का सिद्धान्त 'जैसा बोयेंगे वैसा ही काटेंगे।' जो निंदा करेंगे उन्हें उनका फल अवश्य प्राप्त होगा—परंतु अगर हम प्रतिक्रिया करेंगे—तो उसका फल भी हमें भोगना पड़ेगा। स्वामी विवेकानन्द जी 'राजयोग' में कहते हैं, "प्रत्येक दुष्ट विचार टकराकर वापस अवश्य आयगा। धिक्कार का प्रत्येक विचार, फिर चाहे वह गुफा में रहकर क्यों न किया गया हो संग्रहित होता है, और इसी जीवन में वह प्रचंड शक्ति के साथ एक दिन किसी दुःख

के रूप में अवश्य तुम्हारे पास आयगा। अगर तुम धिक्कार और ईर्ष्या की भावनाओं का पोषण करोगे तो वह तुम पर चक्रवृद्धि ब्याज के साथ आ पड़ेगा, कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती, एक बार तुमने उसे बहने दिया---तो फिर उसके परिणाम को भोगने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। इस बात को अगर तुम याद रखोगे तो दुष्ट कार्य करने से पहले हिचकिचाहट होगी। हम यदि निर्दोष हों, तब भी यदि हमें निंदा सुननी पड़े तब हम ऐसा समझें कि यह भी शायद पूर्व कर्म का फल होगा। तब इस क्रिया-प्रतिक्रिया के विषचक्र में से हम बच जायेंगे।

लोगों के मुख पर ताला नहीं मारा जा सकता। निन्दा करनेवाले निन्दा करते ही रहेंगे। 'बाप, बेटा और गधे' की कहानी तो सभी जानते हैं। बेटा गधे पर बैठा तो लोगों ने बाप की निंदा की, बाप गधे पर बैठा तो लोगों ने बेटे की निंदा की। दोनो गधे पर बैठे—तब लोगों ने निंदा करते हुए कहा कि, देखो, बाप-बेटे दोनों गधे पर अत्याचार कर रहे हैं। दोनों गधे पर से नीचे उतरकर पैदल चलते हुए जाने लगे तो लोगों ने बाप-बेटे की मूर्खता की टीका की। अंत में, लोगों की निंदा पर ध्यान देने का परिणाम यही आया कि, दोनों गधे को उठाकर नदी के पुल पर से गुजर रहे थे तभी गधा नदी में गिर पड़ा। अतः लोगों की निन्दा की परवाह किये बिना अपना बुद्धि के अनुसार सत्कार्य करते रहना चाहिए।

एक साधु नदी के किनारे विश्राम ले रहा था। अपने पास वह कुछ भी नहीं रखता था, फिर बिछावन तो कहाँ से हो? वृक्ष के नीचे जमीन पर एक पत्थर को तकिया बनाकर वह सो रहा था। कुछ सखियाँ पानी भरने जा रही थीं, उन्होंने इस साधु को देखा तो आपस में बातें करने लगी, 'देखा, उस साधु को, कितना ढोंगी है, साधु होते हुए भी तकिया के बिना उसे चलता नहीं है, इसलिए पत्थर का तकिया बनाया है! "पानी भरकर वे वापस उस तरफ से गुजर रही थीं तब उन्होंने देखा कि साधु ने सर के नीचे से पत्थर हटा लिया है। यह देखकर वे एक-दूसरे को कहने लगी, 'साधु सब कुछ का त्याग कर सकता है, किन्तु अहंकार का नहीं। देखा उस साधु को? हमने तो वैसे ही टीका की थी और भाई साहब को बुरा लग गया और पत्थर खिसका लिया!"

कई लोगों का स्वभाव ही निंदा करने का होता है। हम चाहे जैसे भी, जो भी अच्छा कार्य करेंगे तो भी वे कुछ-न-कुछ बुराई अवश्य ढूँढ़ निकालेंगे। वैसे समय में हमें विचलित हुए बिना आत्म-निरीक्षण करना चाहिए और सोचना चाहिए—"वास्तव में जाने-अनजाने हमसे कहीं गलती तो नहीं हो रही है न!" अगर भूल हुई हो तो तुरत क्षमा माँग लें। इससे निंदा करने वाले में अद्भुत हृदय-परिवर्तन होता है। अगर निंदा करने का किसी हेतु हमें नीचा दिखाने का ही हो और हम स्वेच्छा से नीचे उतर जाएँ, नमन करें तथा क्षमा प्रार्थी बनें फिर विरोध पक्ष विरोध में भला रह सकता है? अगर हमारा निर्मम आत्म-निरीक्षण ऐसा संकेत देता हो कि यह जो निंदा सुननी पड़ती है उसमें हम प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से किसी भी प्रकार से दोषी नहीं हैं, हमने नाम-यश की आकांक्षा से या अन्य किसी कारण से निंदक की ईर्ष्यावृत्ति को उत्तेजित करने के लिए भी कोई कार्य नहीं किया है, तो फिर निंदक के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। बिना किसी कारण यदि कोई व्यक्ति निंदा कर रहा हो तो फिर वह ईर्ष्या या किसी मानसिक रोग से पीड़ित है और रोगी के लिए तो हमदर्दी ही होनी चाहिए, अतः इस रोग से वह मुक्त हो उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी ने जब रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और 'शिवज्ञान से जीव सेवा' के आदर्श से सेवा कार्यों का प्रारंभ किया तब संन्यासियों को, रोगियों की सेवा करते, हिसाब रखते तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को करते देखकर लोग बहुत निंदा करते थे।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने शिष्यों स्वामी कल्याणानन्द जी तथा स्वामी निश्चलानन्द जी को रोगियों की सुश्रुषा करने के लिए हरिद्वार भेजा। रामकृष्ण मिशन के साधुओं को अन्य साधु लोग 'भंगी साधु' कहते थे। उन्हें साधु समाज में स्थान नहीं देते थे। धीरे-धीरे सेवा कार्यों की सराहना होने लगी, लोगों ने इस सेवा के मूल्य को समझा, और अब तो अन्य साधुगण स्वयं इस सेवा कार्य में जुट गये हैं। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, 'हर महान कार्य को तीन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है: विरोध उपेक्षा और स्वीकार। कोई भी व्यक्ति जब दृढ़ संकल्प होकर क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए किसी शुभ कार्य का प्रारंभ करता है—तब पहले निंदा का तूफान तो आयगा ही। अतः धैर्य, सहनशक्ति एवं साहस रखना होगा।

स्वामी विवेकानन्द जी ने जब अमेरिका में अल्प समय में ही अद्भुत सिद्धि प्राप्त की तब उनके एक पुराने भारतीय मित्र को बहुत बुरा लगा। उन्होंने ईर्ष्यावश इसाई मिशनरियों से मिलकर स्वामी विवेकानन्द जी की हर प्रकार से निंदा की, समाचार पत्रों में उनके विरुद्ध किया गया यहाँ तक कि उनके चरित्र पर भी झूठा आरोप डाला गया। किन्तु अन्त में लोगों को सत्य का पता चल गया, स्वामी विवेककानन्द विश्ववन्दनीय बन गये।

श्री माँ शारदा देवी, श्रीरामकृष्णदेव की महासमाधि के पश्चात, वैधव्य का चिह्न धारण करने गयीं तब श्रीरामकृष्णदेव ने दर्शन देकर उन्हें ऐसा करने से मना करते हुए कहा, मैं तो एक कमरे में से दूसरे कमरे में गया हूँ।" श्री माँ ने पतली किनारवाली साड़ी पहनना जारी रखा। परंतु इसके लिए लोगों ने उनकी कितनी टीका की। जब वे जयरामवारी में थीं तब जात-पाँत के भेदभाव के बिना हर किसी पर अपनी कृपा बरसाती थीं। अमजाद जैसे मुसलमान डाकू को भी प्रेम से खिलाती थीं। इन सब कार्यों के लिए गाँव के लोगों की कितनी निंदा सहनी पड़ी थी!

श्री रामकृष्णदेव के बारे में तो दक्षिणेश्वर के स्वार्थी कर्मचारियों ने भ्रामक प्रचार किया था—'छोटे पुजारी (श्रीरामकृष्ण) तो पागल हो गये हैं।' भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, ईशु ख्रिस्त, महम्मद पैगंबर, नरसिंह महेता, मीरांबाई, कोई भी लोक निंदा से क्या बच सके थे? अगर हमें सत्य के मार्ग पर जाना हो तो उसके लिए कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी—लोक निंदा सहन करनी ही पड़ेगी। इसलिए जब हमारी कोई निंदा करे—प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से—तब हम इतना करें :—

१. शान्त चित्त से, मस्तिष्क का संतुलन रखकर सब कुछ सुनें, भावना में बह जाने से अपने आप को रोकें तथा बुद्धिपूर्वक विचार करें कि हमारा दोष क्या है।

२. किसी अन्य द्वारा की गयी निंदा की बात हम तक पहुँचे, तब तक उसमें कोई परिवर्तन तो

नहीं आ गया न, इसकी जाँच कर लें। बहुत लोगों को नमक-मिर्च लगाकर बोलने की आदत होती है— इसके अतिरिक्त बहुतों को एक-दूसरे की निंदा की बातें परस्पर को सुनाकर झगड़ा खड़ा कराने की आदत होती है। अतः पहले हम जान लें कि सचमुच में हमारी निन्दा की गयी है या नहीं और क्या की गयी ?

३. हकीकत जानने के बाद उसका पृथक्करण करें। निंदक ने क्यों ऐसी बात की ? इसके लिए प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में, अंशतः भी यदि हम दोषी हों तो अविलंब अपना दोष स्वीकार कर निंदक के पास क्षमा मांग लें। इससे जो लोग हमारे कल्याण के लिए हमारी निंदा करते हैं (हालांकि उनकी संख्या कम होती है !), उनकी कृपादृष्टि हम पर अधिक होगी और जो ईर्ष्यावश अथवा अन्य कारणों से निंदा कर रहे होंगे उनका उत्साह भी क्षमा मांगने से भंग हो जायगा।

४. अगर निर्मम आत्म विश्लेषण के बाद भी ऐसा लगे कि हमारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कोई दोष नहीं है और निंदक ने अकारण ही निंदा की है, तो ऐसा समझें कि निंदक ईर्ष्या आदि मानसिक रोगों से पीड़ित है। ऐसे रोगियों के प्रति हमदर्दी रखें तथा उनका रोग मिटे उसके लिए प्रार्थना करें।

५. निंदक के प्रति हमें कृतज्ञता की भावना रखनी चाहिए। वे हमें अपने क्षुद्र 'अहम्' को त्याग करने की साधना में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, वे अपना पुण्य जाने-अनजाने हमारे खाते में जमा करा रहे हैं—इसके लिए भी हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।

६. 'सत्यमेव जयते' तथा कर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखकर धैर्यपूर्वक निंदा सहन करें तथा क्रिया-प्रतिक्रिया के विषचक्र में से बचने का प्रयत्न करें।

७. लोगों के मुँह पर ताला नहीं लगाया जा सकता। अतः निंदा से विचलित न होकर सत्य के मार्ग पर हम आगे बढ़ते रहें। अंत में संत कबीर की वाणी का अनुसरण करते हुए निंदकों को अपने पास रखकर अपने स्वभाव को निर्मल बनाएँ, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें—

"निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटिर छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥"

अनुवाद : अशोक 'चंचल'
('श्रीरामकृष्ण ज्योत' से साभार गृहीत)

सागर-द्वीप का आदमी : रासबिहारी

स्वामी निरामयानन्द

(मूल बंगला रचना का भाषान्तर)

मनुष्य की बातें कहने या सुनने में मनुष्य को बहुत अच्छा लगता है- यह "मनुष्य" सब समय कोई "बड़ा आदमी" या "महामानव" हो ऐसा नहीं। अति साधारण मनुष्य भी हमारा मन आकर्षित करता है, कई बार ज्यादा ही आकर्षित करता है। ऐसे ही एक-दो लोगों की बातें बताऊँ, जिनकी बात कभी भी भूल न पाऊँगा।

रासबिहारी को कितनी बार कहा—"तुझ पर एक बढ़िया कहानी लिखी जा सकती है। कोई अच्छा लेखक हुआ तो एक उपन्यास ही लिख डाले।"

"आप लिखेंगे महाराज ?"

"हट पगले।"

दिन पर दिन सुनी है उसके बीते जीवन की कहानी—एक तरह से साँस रोके। देखी भी है कितनी विचित्र घटनाएँ आँखों के सामने घटते, प्रारम्भ यदि करना हो है तो एकदम शुरू से ही करना अच्छा है।

यह भी उसी काँथी के बाद की कहानी है मामा के घर से रासबिहारी लौट रहा था, छोटी बहन का हाथ पकड़े पीछावनि से एगोरा की तरफ। हल्की-हल्की वृष्टि हो रही थी—आकाश मेघ से भरा था। अचानक पानी के वेग से रास्ता डूब गया। रासबिहारी बहन को लेकर पेड़ पर चढ़ गया, जो भी कपड़ा गमछा उसके पास था, उसी दोनों को मजबूती से पेड़ की डाल पर बाँध लिया। थोड़े पोहे थे वही खाकर रात बिताई। इसी बीच एक सांप आकर उनके संग जान-पहचान कर गया—क्या खा रहे हैं, शायद यही देखने आया था, सूखे पोहे खाते चला गया। अचानक झुण्ड से एक आवाज हुई, नींद टूटने पर रासबिहारी देखता है बहन नहीं है, गिर पड़ी है—तब भी उतना ही पानी, उस पर प्रबल स्रोत। क्या करे? छोटा है—सुबह होने की प्रतिक्षा में जगकर सावधानी से बैठा रहा। सुबह हुई दिन निकला—पानी कम हो रहा है- रासबिहारी देखता है नीचे एक लड़की पड़ी है नहीं बहन नहीं— बड़ी लड़की। शरीर पर बहुत गहने। एक-दो लोग यह सब लेने आये थे। मृत या मृतवत् लड़की का अट्टहास सुन वे डर कर भाग गये—रासबिहारी भी आँखें बन्द कर जल्दी-जल्दी उस जगह को पार कर निकल गया। संध्या के समय घर पहुँच देखता है, कहीं कुछ नहीं, न घर द्वार, न कोई आदमी। ठगा-सा खड़ा रहा कुछ देर फिर वहाँ से चला आया। शायद उसके माँ-बाप बचे हों तथा कहीं आश्रय मिलने पर रह रहे हों इसी आशा से इधर-उधर भटकता रहा।

लेकिन नहीं, किसी की कोई खबर नहीं मिली। दौड़ता फिरता रहा। बहन की खोज में ही इधर-उधर दौड़ता फिरता रहा। बहकर आयी हुई लड़की मिलो है सुनते ही दौड़ पडता। इस तरह वह आकर पहुँचा सुवर्ण रेखा के तीर पर। वहाँ सुना कि कुछ लोग यहाँ आए थे। एक लडकी का मृत संस्कार करने और नदी में बहकर आई हुई एक लडकी उन्हें मिल गई। रासबिहारी वहाँ भागा-भागा पहुँचा। देखता है अपनी बहन को कितनी सुन्दर सजी हुई है, बढ दुलार में है। उन लोगों ने कहा, हम इसे नहीं देंगे, चाहो तो तुम भी यहीं रही। कुछ दिन बहन के पास बिताकर भरे मन से बिदाई लेकर रासबिहारी वहाँ से चला आया। कहाँ जाए अब ? घर-द्वार नहीं, माँ-बाप नहीं, बहन रहते हुए भी नहीं। दिशाहारा, सर्वहारा, रासबिहारी पहुँचा सागरद्वीप में। वहां रामकृष्ण मिशन के साधु महाराज के स्नेह आश्रम में अटक कर रह गया।

मैं जब गया, देखता हूँ, रासबिहारी आश्रम का प्राण है—गाय बछरों को देखभाल करना, खेत के छोटे-छोटे कार्यों में खाना बनाने में, मछली पकडने में—हर काम में रासबिहारी। फिर सब काम हो जाने पर था रात में जगकर गीता गाना।

एक लाल गाय थी बड़ी सुन्दर, उसकी दो करूण आंखें थीं बिल्कुल हिरणी-सी—एक बार उसका बच्चा मर गया। पिन्हाक के अभाव में उसके थन अकड़ से गए, दूध नहीं देती थी सर्वदा बच्चे को ढूँढ़ती ऐसे समय में रासबिहारी उसके थनों के पास जाकर मुँह से जोर लगाकर दूध पीने लगा—गाय को बहुत आराम मिला, वह रासबिहारी का बदन एवं सिर चाटने लगी—एक देखने लायक दृश्य। उसके बाद रासबिहारी प्रतिदिन पिन्हाने के बाद दूध दूहता। किसी-किसी दिन वह गाय के पास कुछ क्षण के लिए लेटा रहता। गाय उसको चाटती। हम पूछते तुझे लगती नहीं ? गाय की जीभ तो खुरदुरी होती है। वह कहता, "वह मेरी माँ है।

सालभर बाद लाल गाय को जब फिर से बच्चा हुआ तो रासबिहारी बोला, "महाराज, बच्चे का नाम रासबिहारी रखना पड़ेगा। हम सब राजी हुए। यह हुआ गाय बछड़ा का पर्व।

अब मछली पर्व पर आया जाय।

पूज्यनीय राखाल महाराज प्राय: कांथी से सागरद्वीप आते थे, एक बार अचानक पहुँचे, जब भोजन करने बैठे—आयोजन देखकर बोले क्या रे रासबिहारी शाकाहारी ही खिलाएगा क्या ? "नहीं महाराज, जरा धीरे-धीरे खाइये। सुनाई पड़ा सिगरी पर कड़ाही में तेल गरम हो रहा है, उधर पानी में छप-छप की आवाज हो रही है—कुछ देर बाद ही सुनाई पड़ा, आंगन में पेड के नीचे मछली काटने की आवाज उसके एक मिनट बाद कडाही में तलने की आवाज।

महाराज ने पूछा किस तरह मछली पकड़ी ? पोखर की आड में उनके रहने की जगह मुझे मालूम है। हाथ बढ़ाते ही मछली मिलती है। ऐसे ही कितने दिन वर्षा होने पर उसे रोककर नहीं रखा जा सकता था जाल बिछाए मछली पकड़ता था। एक बार जाल में मछली के साथ एक सांप फँस गया। मैंने कहा "फेंक दे, मछली साँप के जहर से जहरीली हो गयी होगी।" वह तो हँसते-हँसते लाल हो गया—"तो फिर पोखर की मछलियाँ कैसे खाते हैं ?" मैने कहा—तेरे साथ तर्क नहीं कर सकता—तुझे

खाना हो खा, हम नहीं खायेंगे :" तब वह बोला, "ओह। आप शायद नहीं जानते—मै वैष्णव हूँ, मछली नहीं खाता।" "तो फिर मछली मारकर पाप क्यों करता है ?" "आप लोगों को खिलाकर जो पुण्य करता हूँ, उससे यह पाप कट जाता है।" रासबिहारी ने कहाँ से यह ज्ञान संग्रह किया था पता नहीं, लेकिन मैंने देखा—उसका सहज नीतिज्ञान, सत् साहस एव निर्भीक होकर घूमना फिरना और कहना—सुनना। सौभाग्य से उसकी मंत्र दीक्षा बेलूड़ मठ के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी विरजानन्द से हुई थी। दीक्षा तो कितने ही लोगों की होती है, परन्तु विश्वास कितनों का होता है। आश्रम के एक लड़के की भी दीक्षा हुई थी, वह पढ़ाई-लिखाई की सुविधा के लिए काकद्वीप के एक आश्रम में चला जाता है एवं वहाँ भी दीक्षा ले लेता है। यह बात रासबिहारी के कानों में पहुँचती है। मौका पा एक बार काकद्वीप जाकर उस आश्रम में घुस पड़ा। सिर पर पगडी बांधे लाठी और लालटेन हाथ में लिए आवाज लगाने लगा "इस आश्रम में कोई एक हैं— जिन्होंने स्वामी गिरजानन्द के दीक्षा देने के बाद भी एक लडके को दीक्षा दी है। मै उन महापुरुष के दर्शन करना चाहता हूँ।" "खैर जो भी हो उसी लड़के ने आगे आकर उसे चुप कराया वह लड़का कुछ दिन बाद फिर हमारे आश्रम में लौट आता है।

रासबिहारी किसी से नहीं डरता था। अमावस्या की रात को भी वह आठ-दस मील दौड़कर जा सकता था। कोई काम आ पड़ने पर वह साँप या बाघ से भी नहीं डरता था, और ऐसा कहा भी गया है कि सांप और बाघ से आमना-सामना यदा-कदा ही होता है। पर वह एक जन से डरता था—अपनी सास से। बचपन में जोर-जबरदस्ती कर कुछ लोगों ने उसका ब्याह करवा दिया था। परन्तु वह आश्रम में ही रहता था। सास आकर कभी-कभी कुछ पैसे ले जाती थी। स्कूल में जो चपरासी का काम करता था उसी की तनख्वाह थी। हम कहते—"घर क्यों नहीं जाता ? वह कहता, "ससुराल। अरे बाप रे। मेरी जन्म-पत्री में नारी के हाथों मृत्यु लिखी है।" मैं कहता, "क्या आश्रम में रहने पर मरेगा नहीं किसी दिन ? यह सुन कर चुप्पी साध लेता।

रासबिहारी की कितनी बातें कहूँ – महाभारत कहानी है। हम उसे बहुत प्रेम करते थे, वह भी हमें मन-प्राण से चाहता था। जो भी कठिन काम जब भी कहा रासबिहारी ने कर दिया, साहस का काम एवं सोच-समझ का काम। लिखाई-पढ़ाई उसकी नहीं के बराबर थी परन्तु मनुष्य के रूप में एक अपूर्व सृष्टि का नमूना था। अपनी मान मर्यादा के प्रति भी उसकी जागरूकता जरूरत से ज्यादा उभर आती थी हर काम एवं हर बात में।

चौदह साल बाद गया था सागरद्वीप। रासबिहारी दौड़ा आया— सारी संध्या सुनाने लगा अपनी चौदह साल की सुख-दुख की कहानी बोला, एक बात कहता हूँ, बात रखनी होगी। "क्या ?" "सागर-स्नान के लिए जाएँगे न। उसी रास्ते में मेरा घर है, आना पड़ेगा— लड़के-लड़कियों को आशीर्वाद देने।" "क्या कहता है ?" "हाँ एक छोटा-सा घर बनाया है। सड़क के किनारे।" उसके घर गया था। बड़े जतन से खिलाए अपने पेड़ के केले और शरबत। बच्चे-बच्चियों के खाने के लिए कुछ देकर आया। लौटते समय चुटकी लेते हुए पूछा, "जन्म-पत्री की बात याद कर तुझे और डर नहीं लगता।" सिर झुकाकर हँसने लगा रासबिहारी।

(उद्बोधन कार्यालय कलकत्ता से प्रकाशित ग्रन्थ "प्राण-पुरुष" से साभार गृहीत)

देवलोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक : स्वामी ज्ञानातीतानन्द

रामकृष्ण आश्रम, राजशेर

स्वामीजी के निर्देश से महापुरुषजी द्वारा मठ के लिए रुपया एकत्र करना—

एक दिन सायंकाल महापुरुष महाराज अपने घर में अकेले बैठे। इसी समय स्वामी धर्मानन्द महाराज आकर प्रणाम करके खड़े होते ही महापुरुष जी बोले—'ए जी जतीन, क्या खबर? अच्छे हो तो? धर्मानन्द महाराज हाथ जोड़ कर बोले : 'आजकल रोगियों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि प्रातःकाल आने का बिल्कुल समय नहीं मिलता--प्रथम पंगत में खा भी नहीं पाता—किसी-किसी दिन द्वितीय पंगत में भी नहीं आ पाता। आपको कितने दिन से प्रणाम भी नहीं कर पाया। मन में खूब खराब लग रहा था इसीलिए शाम को आया हूँ। कैसे हैं, महाराज? आपको नहीं देख कर मन कैसा करता है।' महापुरुष जी बोले 'मेरी बात और मत पूछो। ठाकुर इस समय जिस अवस्था में रखे हैं उसमें सब समय ही व्यस्त रहना पड़ता है--नीचे उतरने का भी समय नहीं मिलता। पहले महाराज थे, उनके ऊपर से ही सब झड़-झपटा जाता, अब सभी झमेला मुझे ही सम्भालना पड़ता है। परन्तु लोगों का कल्याण हो रहा है—यही देख कर आनन्द होता है।' बाद में रोगियों के प्रसंग में धर्मानन्द महाराज ने महापुरुषजी से पूछा : 'हम लोगों ने सुना है स्वामी जी ने आपको मठ के लिए रुपया एकत्र करने के लिए कहा था? धर्मानन्द स्वामी की बात सुन कर वे हँसते-हँसते बोले—'वह एक मजे की बात है। वह तो अनेक पुरानी बात है। स्वामी जी द्वितीय बार पाश्चात्य भ्रमण पूरा करके (१९०० ई० दिसम्बर के प्रारम्भ में) बिना समाचार दिए एक रात्रि मठ में आकर उपस्थित हो गए। हमलोग तब खाने बैठे थे। उड़िया माली दौड़ कर आकर समाचार दिया, "एक साहेब आया है।" इधर साहबी पोशाकमें स्वामीजी आकर हाजिर हो गए। हँसी होने लगी। वे बातचीत करते-करते खाने बैठ गए एवं बातचीत में जान गए कि सेवियर साहेब वास्तव में इहलोक में नहीं हैं। उन्होंने मधर सेवियर को सान्त्वना देने के लिए मायावती जाना प्रथम कर्तव्य माना। किन्तु जायेंगे कैसे। तब शीतकाल, रास्ता घाट सब वर्फ से ढँका हुआ। डाकबंगला, दुकान रास्ता सभी बन्द। अनेक रात्रि पर्यन्त यही सब आलोचना करके यह ठीक हुआ कि घोड़ा, डन्डो, कुली इत्यादि लेकर काठगोदाम आने के लिए मायावती में लिखा जाएगा। मायावती से खबर पाकर स्वामी जी मुझको और सदानन्द को साथ लेकर (२७ दिसम्बर) रवाना हुए एवं सब कष्ट उठा कर २९ दिसम्बर को काठगोदाम और तीन जनवरी ६५ मील दुर्गम पहाड़ी रास्ता चल कर मायावती में उपस्थित होकर सेवियर पत्नी के साथ मिले।

मैं भी मिलने गया एवं मदर सेवियर का रोना देखकर मैं भी रो पड़ा। स्वामी जी धीर, स्थिर। वे रोज मदर सेवियर के पास जाते। इस प्रकार पन्द्रह-सोलह दिन मायावती में बिता कर (१८, जनवरी) मुझको व सदानन्द को लेकर बेलूड़ मठ की ओर रवाना हुए। लौटने के रास्ते में पीलीभीत आकर के मुझसे बोले, "तारक दा, आप अभी मठ न जाकर इधर घूमफिर कर मठ के लिए कुछ रुपया-पैसा इकट्ठा करिए एवं साथ-ही-साथ ठाकुर के भाव प्रचार में लग जाइए।" स्वामीजी के आदेश से मैं पीलीभीत में उतर पड़ा

एवं विभिन्न भक्तों के साथ मिल कर मठ के अभाव की बात कही एवं बातचीत के माध्यम से ठाकुर के भाव प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश के नाना स्थानों में कुछ महीने तक घूमा फिरा। रुपया पैसा कुछ अधिक नहीं मिला परन्तु ठाकुर की बात सब जगह बोला एवं लोगों ने आग्रह के साथ सुना।

'स्वामीजी सदानन्द को लेकर (२८ जनवरी) मठ में पहुँचते ही नाना कार्य में लग गए। हमलोगों ने सुना है एक दिन कल्याणानन्द को बुलाकर बोले, "देखो कल्याण, हृषिकेश हरिद्वार अंचल में अस्वस्थ, रुग्ण साधुओं के लिए कुछ कर सकते हो? उन लोगों को देखने वाला कोई नहीं है। तुम जाकर उन लोगों की सेवा में लग जाओ।" स्वामी जी ने परिव्राजक अवस्था में भ्रमण करते-करते वृद्ध पीड़ित साधुओं की असहाय अवस्था अपनी आँखों से देखा था। हृषिकेश में वे स्वयं एक बार मरणासन्न अस्वस्थ हो गए थे। उस सब के प्रतिकार के लिए उन्होंने कनखल-सेवाश्रम की स्थापना किया।'

'ब्रह्मानन्द चरित' ग्रन्थ के अनुसार, महाराज की इच्छानुसार भक्त उपेन्द्र नारायण देव ने चार रुपया दान किया था, तारिनी पाल अपने जीवन का सब संचय दो हजार रुपया दिया। इसी रुपये की सहायता से १९०६ ई० ३१ जुलाई को सेवाश्रम और अद्वैताश्रम की जमीन खरीदी गई। सेवाश्रम के लिए खजांची का बगीचा (एकांश) खरीद कर नये गृहादि निर्माण की तैयारी चल रही थी। १९०८ ई० १६ अप्रैल को महाराज ने नई खरीदी जमीन पर सेवाश्रम की भित्ति स्थापना किया। महाराज के आदेश से स्वामी विज्ञानानन्द ने कुछ दिन काशी में रह कर गृहनिर्माण की प्राथमिक तैयारी कर दिया। १९१० ई० के प्रथम भाग में गृहनिर्माण समाप्त होने पर महाराज, महापुरुष महाराज, रामलाल दास और बहुत से साधुओं को साथ लेकर काशी धाम आए।

स्वामी जी ने जो मठ के लिए रुपया पैसा इकट्ठा करने के काम में लगाया था उस प्रसंग में महापुरुष जी में एक बार कहा था: 'श्रीमती ओलीबुल के रुपये से मठ की जमीन तो खरीदी गई किन्तु नया ठाकुर घर, मठ-वाड़ि निर्माण, पुराने घर का संस्कार, मठ की जमीन का सुधारना—इस सब में स्वामी जी के हाथ में जो सब रुपया था वह शेष हो गया। इधर तब और भी कार्य बचा था। मठ तो हुआ परन्तु वह चलेगा कैसे। द्वितीय बार पाश्चात्य भ्रमण शेष कर वे खाली हाथ मठ लौटे, इसीलिए मदर सेवियर को सान्त्वना देने के लिए मायावती जाने से पूर्व एक दिन हम सबको बुला कर बोले कि, "तुम सभी प्रत्येक अन्ततः दो हजार रुपया इकट्ठा करके ठाकुर-सेवा फण्ड में दो। और ठाकुर के भाव प्रचार में सब लग जाओ।" सभी ने उनकी बात शिरोधार्य करके एवं रुपया इकट्ठा करने के काम में लग गए। मायावती से मुझको लेकर मठ के रास्ते में "पीलीभीत" में उतर कर मुझको लगता है बोले, "तारक दा आपका अभी मठ नहीं जाना होगा। आप इस अंचल में ठाकुर का भाव प्रचार और कुछ अर्थ संग्रह के कार्य में लग जाइए। मेरे शरीर की जो अवस्था है उससे और अधिक दिन नहीं। मठ की आर्थिक अवस्था की कुछ उन्नति देख कर जाना चाहता हूँ।" स्वामी जी इस प्रकार बोले कि उनकी बात सुन कर मैं "पीलीभीत' में विस्तरा सामान लेकर उतर पड़ा एवं धीरे-धीरे उत्तर प्रदेश के नाना स्थानों में घूम कर, विभिन्न लोगों के साथ मिल कर रुपये-पैसे इकट्ठा करने की कोशिश करने लगा। रुपया पैसा कुछ ज्यादा नहीं मिला। ठाकुर के विषय में बातचीत में कुछ समय विताया था। वह भी एक रकम की तपस्या थी। मैं उस समय कपर्दक शून्य।' स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज भी इसी समय प्रचारकों को बार-बार कहते: 'जब (तुम लोग) कोई वक्तृता देना, परमहंसदेव की बात जितना बोल सकना बोलना, कारण कि वह अति सहज व्याख्या।'

महापुरुषजी द्वारा भुवनेश्वर मठ में वासन्ती पूजा और ठाकुर मन्दिर की प्रतिष्ठा :—

राजा महाराज की विशेष इच्छा थी कि १९२२ ई० में भुवनेश्वर के मठ में वासन्ती पूजा करेंगे एवं उसी समय मंदिर प्रतिष्ठा भी होगी, उसी प्रकार सब आयोजन किया था। किन्तु उसी वर्ष कुछ दिन बीमारी से भुगतकर अप्रैल मास के प्रारम्भ में उनका शरीर त्याग होने से तब भुवनेश्वर मठ में वासंतीपूजा और मंदिर प्रतिष्ठा करना सम्भव नहीं हुआ। इसीलिए महाराज की अंतिम इच्छा स्मरण करके प्रवीण संन्यासियों के परामर्श से महापुरुषजी १९२३ ई० में भुवनेश्वर मठ में वासंतीपूजा एवं उसी के साथ-साथ ठाकुर मंदिर प्रतिष्ठा की आयोजन की। इस अनुष्ठान में योगदान के लिए वे बेलूड़ मठ और विभिन्न केन्द्रों से प्रायः तीस पुराने एवं नवीन संन्यासी-ब्रह्मचारी समेत भुवनेश्वर आए। इसी समय उन्होंने मुझे भी साथ में लिया था। इस उपलक्ष में पवित्र शिवक्षेत्र भुवनेश्वर मठ मानो धर्म क्षेत्र में रूपांतरित हुआ था। कई दिन तक चलने वाला पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, भक्त और दरिद्रनारायण सेवादि में जनस्रोत की तरह दूर-दूर स्थान से बैल गाड़ी से या पैदल चल कर बहुत ने उत्कलवासी इस उत्सव में योगदान करके आनन्द लाभ किया था।

महापुरुषजी के भुवनेश्वर पहुँचने के पूर्व मठ के बरांडे में मंडप बांध कर पूजा की व्यवस्था हुई थी एवं प्रतिमा भी मंडप में लाई गई। महापुरुषजी के साथ में पुजारी, तन्त्रधारक आदि सब आए थे। सभी ने कहा कि मंडप में यह प्रतिमा अच्छी नहीं लग रही है, आपस में परामर्श करके मठ घर के बीच में बड़े हाल घर में पूजा होगी ठीक हुआ। प्रतिमा बड़ी सावधानी से उठा कर हालधर में स्थापना किया गया एवं सुदक्ष कलाविद्या विशारद स्वामी अम्बिकानन्द महाराज के निर्देशानुसार प्रतिमा में कुछ परिवर्तन करने से मूर्ति और सुन्दर एवं मानने के योग्य हो गई थी। पूजा निर्विघ्न सम्पन्न हुई। पूजा के बीच एक दिन एक स्थानीय पंडित अपना रचित एक संस्कृत श्लोक महापुरुषजी को प्रदान किया। एक संन्यासी ने श्लोक पढ़ कर उसका मर्मार्थ बता कर कहा कि, पंडितजी एक पट वस्त्र चाहते हैं। कहना व्यर्थ है, महापुरुषजी ने पंडितजी की उस प्रार्थना को तुरंत पूर्ण कर दिया। इधर महाष्टमी के दिन विशेष पूजानुष्ठान के बाद महापुरुषजी ने शुभ मुहूर्त में मंदिर प्रतिष्ठा करके ठाकुर की प्रतिकृति हृदय में रखकर नये मन्दिर में स्थापना करके विशेष पूजादि किया। नवमी के दिन मंदिर में एकासन में बैठकर महापुरुष जी कटक, मध्यग्राम आदि स्थानों से आए बाइस लोगों को मंत्रदीक्षा दिया था। अढ़ाई घंटा एकासन पर बैठ कर दीक्षान्त में वे जब ठाकुर मन्दिर से निकल आए तब भी दिव्य भावावेश से उनका शरीर काँप रहा था, मुखमण्डल लाल और आँखें अर्धनिमिलित थी। वे गिरते-गिरते किसी प्रकार अपने घर में आए। यह भावावेश बहुत देर तक था। उन्होंने प्रत्येक दीक्षार्थी को पृथक-पृथक भाव से मन्त्रदीक्षा और जप-ध्यान का उपदेश दिया था। मंदिर प्रतिष्ठादि में अनियम और परिश्रम के फलस्वरूप महापुरुषजी का शरीर खराब हुआ था। इसी अस्वस्थ शरीर से वे उत्सवादि के बाद अनुष्ठान में भाग लिया था। नवमी के दिन एक करुण दृश्य ने उनको व्यथित किया था। लोगों के खाने के बाद जहाँ पत्ते फेंके गए थे वहाँ से कुछ निम्नश्रेणी के लोग उस पत्ते से जूठा खाना बटोर कर खाते देख कर महापुरुषजी विशेष दुखित हुए। वे मुझको बुला कर बोले। 'देखो, इन लोगों को तो बैठ कर खिलाया नहीं जाता। तुम एक कार्य करो—किसी को ले जाकर कुछ बाल्टी खिचड़ी, तरकारी और मिष्ठान्नादि ला कर इन लोगों को बैठा कर खिलाओ तो। अहा! यही लोग ठीक-ठीक नारायण है। सामाजिक पीड़न के कारण ये लोग पाँच लोगों के साथ बैठ कर खा नहीं सकते। ये लोग कितने भूखे हैं, जूठा इकट्ठा कर खा रहे हैं। मैं जल्दी-जल्दी कुछ स्वयंसेवकों को

लेकर पत्ते में प्रायः तीस-चालीस हरिजनों को परितोषपूर्वक खिलाया। महापुरुषजी पूरे समय तक खड़े होकर इन लोगों का खाना देख रहे थे। भारत के सभी प्रांतों में एक श्रेणी लोगों को 'अछूत' कह कर उन लोगों को सभी प्रकार की सुयोग-सुविधा और अधिकार से वंचित करके रखा गया हैं। उन लोगों के लिए महापुरुष जी का प्राण रोता एवं सुयोग सुविधा पाते ही वे उन लोगों की सेवा यत्न करते। एकादशी के दिन उन्होंने एक ब्रह्मचारी को संन्यासव्रत में दीक्षित किया। इस विरजा होमानुष्ठान में स्वामी शुद्धानंद महाराज आचार्य थे। भुवनेश्वर मठ में राजा महाराज की जीवन्त उपस्थिति एकांत भाव से अनुभव करते हुए महापुरुषजी कुल लगभग डेढ़ महीने महानन्द में थे। बहुत से भक्त उनको आध्यात्मिक स्पर्श से धर्म-जीवन लाभ कर धन्य हुए थे। किसी-किसी दिन वे साधुओं के साथ भुवनेश्वर मन्दिर में लिंगराज महाप्रभु का दर्शन करने जाते, रामेश्वर शिवमन्दिर भी एक दिन दर्शन किया था एवं मेरे साथ प्रतिदिन शिव मंदिर में पूजा भेजते थे। तब भुवनेश्वर का यह अंश जंगल से भरा था—लोगों का आवास भी खूब कम था। दिन के समय में भी जाने में डर लगता। भुवनेश्वर के भविष्य में उन्नति के सम्बन्ध में राजा महाराज ने अनेक बातें कही थी। इस महापीठ की अध्यात्मिक महिमा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, 'भुवनेश्वर शिव क्षेत्र, गुप्त काशी समझना यहाँ थोड़ा-सा भी साधन-भजन करने से बहुत फल मिलता है।' (क्रमशः)

लघु कथा

तीर्थ यात्रा से लौटते हुए सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, मुक्ताबाई एवं अन्य सन्त भक्त गोरा कुम्हार के यहां ठहरे हुए थे। सब भक्त एक साथ बैठे हुए थे, सत्संग चल रहा था। पास ही कुम्हार की थापी खड़ी हुई थी। उस पर मुक्ताबाई की दृष्टि पड़ी, उन्होंने पूछा, यह क्या चीज है ?' भक्त गोरा ने उत्तर दिया, 'यह थापी है, इससे मिट्टी के घड़े ठोंककर यह देखा जाता है कि कौन-सा घड़ा पका है और कौन-सा कच्चा। मुक्ताबाई हँस पड़ी, उन्होंने कहा "हम मनुष्य भी तो मिट्टी के घड़े ही हैं। "क्या इससे हमारी परीक्षा कर सकते हो ?" "हाँ-हाँ क्यों नहीं।" यह कहकर गोरा ने अपनी थापी उठाई और एक-एक सन्त के सिर पर थपथपा कर देखने लगा। उनमें से कुछ ने इसे विनोद समझा, कुछ को रहस्य लगा। किन्तु नामदेव को बुरा लगा कि उन जैसे संतों की थापी से यह कुम्हार परीक्षा कर रहा है। उनके चेहरे पर क्रोध की एक झलक भी दिखाई दी। जब उनकी बारी आई तो गोरा ने उनके सिर पर थापी थपथपाते हुए कहा "यह घड़ा कच्चा है।" फिर नामदेव से बड़े प्रेम और आत्मीयता से बोले, "नामदेव आप निश्चय ही संत हैं किन्तु आपके हृदय का अहंकार अभी नहीं गया। जब तक गुरु की शरण में नहीं जाएँगे, यह अहंकार दूर नहीं होगा और कच्चे ही रह जाएँगे।"

सन्त नामदेव को दुख हुआ साथ ही बोध हुआ कि स्वतः स्फूर्त ज्ञान में त्रुटि रह जाती है तथा मनुष्य देहधारी गुणरूपी नारायण की शरण में गए बिना अहंकार का नाश नहीं होता। उन्होंने सन्त श्री विनोबा खेचर से दीक्षा ली।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पी य र ले स

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड

पीयरलेस भवन

३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०००६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

**स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।**

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।